

हमारे मुस्लिम संत कवि

कृ० गो० वानखडे गुरुजी

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

आश्विन 1906, सितम्बर 1984

मूल्य : 12 00

निदेशक प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार,
पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110 001 द्वारा प्रकाशित

विक्रय केन्द्र • प्रकाशन विभाग

- सुपर बाजार (दूसरी मजिल), कॅनॉट सर्कस, नई दिल्ली-110001
- कॉमस हाउस, करीमबाई रोड, बालाड पायर, बम्बई 400038
- 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता 700069
- एल० एल० जॉडोटोरियम, 736, अन्नासल, मद्रास 600002
- बिहार राज्य सहकारी बक बिल्डिंग, जशोन् राजपय, पटना 800004
- निक्ट गवनमॅट प्रेस, प्रेस रोड, त्रिवेन्द्रम 695001
- 10 बी०, स्टेशन रोड, लखनऊ 226001
- प्रकाशन विभाग, राज्य पुरातत्त्ववीय सहाय्य बिल्डिंग, पत्तिलक गाडन,
हवराबाद 500004

प्रबन्धन, भारत सरकार मुद्रणालय, नासिक द्वारा मुद्रित ।

"उपराष्ट्रपति, भारत

नई दिल्ली

सितम्बर 24, 1982

यह जानकर मुझे अतीव प्रसन्नता हो रही है कि श्री वृ० गो० वानखडे गुरुजी ने 'हमारे मुस्लिम सत कवि' पुस्तक में विभिन्न मुस्लिम सत कवियों की जीवनिया का सक्लन किया है, जो सूचना और प्रसारण मन्त्रालय के प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित की जा रही है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि समपण की भावना से लिखी गई यह कृति विभिन्न धर्मों के लोगों में आपसी मद्भाव व भाईचारे को बनाए रखने में उपयोगी सिद्ध होगी।

आशा है, यह कृति हमारे सतों की वाणियों और उपदेशों से वर्तमान पीढ़ी को प्रेरित करेगी।

मैं इसकी सफलता की कामना करता हूँ।

975
211
एम हिदायतुल्ला

समर्पण

एक हृदय हो भारत जननी
भारतीय एकता के प्रतीक श्री गुरुदेव
आचार्य भणसाली जी को
जिनके चरणों में बैठकर
गुरु का ज्ञान, पिता का आशीर्ष
और माँ की ममता प्रसाद
रूप में पाई ।

अजस्त धारा

भारतीय इतिहास में प्राचीन काल में सत्त साहित्य की जो अजस्त धारा बह रही है, उसने मदैव हमें स-भाग की ओर प्रेरित किया है। सत्ता की यह अमन वाणी निराशा एवं अवसाद के क्षणों में मानव मात्र को आशा की ज्योति उपलब्ध कराती रही है। वस्तुतः इस वाणी ने सदा समान रूप से मानव मात्र के कल्याण का पथ प्रदर्शित किया है।

सत्ता की कोई जाति नहीं होती—‘जात न पूछो साथ की’। वे चाह किसी भी जाति के हों, आदि में अत तक सबप्रथम सत्त ही होते हैं। उन्हें ऐसा ही स-भाग इंगित करना है, जिम पर चल कर प्राणी-मात्र अपने सही लक्ष्य की ओर अग्रसर हो सके, मनुष्य-मनुष्य के बीच विभिन्न धर्मों और मतों के होने हुए भी सामाजिक एकता एवं धार्मिक समन्वय की भावना सुदृढ़ हो। हम चाहे किसी भी धर्म को माननेवाले हो हमें यह याद रखना है कि सबका ईश्वर या खुदा एक ही है। इसी एकेश्वरवाद का म-देश देकर इन म त-वधियों में देश की एकता को बनाए रखने का गुरतर दायित्व निभाया है। समय समय पर देश में हिंदू और मुस्लिम धर्मावलम्बियों को राम-रहीम और अवतार-पैगम्बर में एक ही रूप में दर्शन करने या उनका आभास करने की प्रेरणा इन सत्त-वधियों ने ही दी। रसखान मुसलमान होते हुए भी यह महन में ममथ हुए “बोटिन्ह हों कलि धोत के धाम करील के कृजन ऊपर पारो” अथवा या “लरुटि अथ कामरिया पर, राज तिह पुर का तजि डारोँ।”

आज के युग में आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य सकीण भावना का शिकार न हो, अपने उदात्त दृष्टिकोण से एक धर्म या जाति वाले दूसरे धर्म और जाति वालों के निकट सपक में आन का प्रयास करे। निवृत्ता स ही एक दूसरे के बारे में भ्रम, सदेह, भय आदि ऋणात्मक धारणाओं का निवारण समभव है। स्वस्थ मवधों की आधारशिला अधिकाधिक परस्पर सपक और सद्भाव ही हो सपता है। इस महान उद्देश्य की प्राप्ति की दिशा में प्रस्तुत पुस्तक प्रेरणा-स्रोत सिद्ध होगी, यह हमारी अपेक्षा और विश्वास है। वानखडे गुरुजी स्वम सत्त माहित्य के चलते-फिरते विश्व कोश हैं और यह वृत्ति उसी विश्वकोश का भगीरथ प्रयास है।

प्राक्कथन

“इन मुसलमान हरिजनन प
कोटिन हिन्दुन वारिए”

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

दीपावली के अवसर पर जिस प्रकार असरय दीपक अधकाराच्छन्न गगन-मडल को प्रकाशित कर देते ह, उसी प्रकार सतो की जीवनिपा भी माया मोह के अधकारमरे विश्व को आलोकित करती ह। हृदय पर जैसा प्रभाव सनवरिन्न डालता ह, वता जय कोई साधन नहीं। सतो के सदेश मानवता के लिए महान् आध्यात्मिक सम्पदा ह।

सत का चरित्र सदब नित नवीन ह, मानव जीवन के लिए मगलमय ह। वह प्राचीनकाल से आज तक मानव जीवन को सात्विक स्फूर्ति प्रदान करता आया ह। चिन्तन, मनन, जादश व्यवहार, मन तथा इन्द्रियो पर विजय, पवित्र सेवा भाव, त्याग और तपस्या, त्रिय विरक्ति, भगवदभक्ति और प्रेम का सच्चा स्वरूप सन भक्ता के जीवन में ही पाया जाता ह। भक्तो के भाव विभिन्न, विचित्र और अतह्य होते ह। अपने प्रभु के साथ वे अपने भाव के अनुसार ही तादात्म्य स्थापित करते ह। भक्त-रत्नल भगवान भी भक्त के भाव के अनुसार ही लीला करके अपने भक्तो को सुख देते ह।

यह पुस्तक सतो के विविध, परम पवित्र मधुर भावो की छावी ह, जिनका स्मरण अत करण को पवित्र और ईश्वर में प्रीति उत्पन्न करता ह। इसीलिए इसकी यहुत बडी उपयोगिता ह। वास्तव में, सत चरित्र मानव जाति के लिए सर्वात्म विद्यालय ह। मनुष्य इस विद्यालय से जो पाठ ग्रहण कर सकता ह, वह जयन वहाँ भी समभव नहीं। आज तप सत्कार पर सतो के जीवन का जितना प्रभाव पडा ह, उतना शायद और किसी का नहीं। आज मनुष्य में जितनी भी मानवता नखर आ रही ह, वह उहीं के जीवन तथा उपदेशो का ही प्रभाव ह। इसीलिए इसकी बडी उपयोगिता ह।

इस पुस्तक में चुने हुए 41 मुस्लिम सत कवियो का संक्षिप्त जीवन-परिचय उनके उपदेशा सहित दिया गया ह। उनके जीवन दशन तथा उपदेशों से मानव जीवन

को नई प्रेरणा मिलती है। सत, भक्त, महात्मा किसी भी धर्म में पैदा हुए हों, वे कभी भी देश काल, जाति और सम्प्रदाय की सीमा में सीमित नहीं होते। उनको वाणी सावजनिक और सावधानिक होती है। इस पुस्तक में दिए हुए सभी सतों की जीवनीया यद्यपि संक्षेप में दी गई हैं, फिर भी उनके जीवन की महत्वपूर्ण बातें देने की चेष्टा अवश्य की गई है।

आमतौर पर सतों का जीवन चमत्कार से भरा होता है। उनके जीवन में चमत्कारिक घटनाओं का होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। लेकिन, इस पुस्तक में चमत्कारपूर्ण बातें कम-से कम दी गई हैं, क्योंकि आज का बुद्धिजीवी समाज उसे सहज रूप में ग्रहण नहीं कर पाता।

सत भक्तों के जीवन में चमत्कार हो सकते हैं, पर तु चमत्कार या अतीतिक घटनाओं में सत भक्तों के पवित्र जीवन की पूर्णता नहीं है। चमत्कारों के बल पर सत भक्त कहलाना या अपने आपको यसा कहना, सही रूप में सच्चे भक्त का तिरस्कार करना है। सत भरतो का जीवन सयथा कल्याणकारी, बराग्यमय, ज्ञानमय और प्रेममय होता है। ऐसा जीवन स्वयं आदरणीय, स्पृहणीय और अभिनवनीय है।

आज के वैज्ञानिक युग में हमारा जीवन भौतिकता में इतना रम गया है कि जीवन मूल्य ही बदल गए हैं। इसी कारण जीवन में दिनो दिन अशांति जा रही है। अतः जब तक विज्ञान और अध्यात्म का सम्बन्ध नहीं होगा, तब तक मानव को सुख शांति प्राप्त नहीं हो सकती।

आशा है, इस पुस्तक का जनता जनार्दन में आदर होगा और इसके पठन पाठन से सभी वर्गों और धर्मों के लोग लाभान्वित होंगे।

—कृ० गो० वानखडे गुरुजी

अनुक्रम

	पृष्ठ
1 कवीर साहव	1
2 गायकाचाय मिया तानसन	6
3 रसधान	14
4 अमीर खुसरो	18
5 रहीम	23
6 आलम	29
7 दाता गजवण	33
8 बाबा फरीद	40
9 बुल्लेशाह	44
10 रज्जवजी	50
11 एनबुल्ला शाह साहव	55
12 लतीफ शाह	57
13 सत यारी साहव	60
14 वाजिदजी	62
15 वपनाजी	64
16 शाह अली बादर	66
17 दरिया साहव (भारवाड बाल)	69
18 कमाल साहव	72
19 दीन दरवेश	77
20 शेख महम्मद बाबा	82

	पृष्ठ
21 साज	89
22 फारे वेग	93
23 जमाल शाह	97
24 अलबेली अली	98
25 शाह हुसेन फकीर	99
26 जगली फकीर सय्यद हुसन	100
27 दरिया साहब (बिहार वाले)	101
28 शेख निहार	103
29 नूर मुहम्मद	104
30 शेख नबी	105
31 मुत्ला वजही	106
32 शेख अब्दुल क़ुदूस	107
33 कुतुबन	108
34 मयन	109
35 मलिन मुहम्मद जायसी	110
36 उसमान	113
37 कासिम शाह	114
38 कादिर	115
39 मुबारक	116
40 जमाल	117
41 गुलाब नबी 'रमलीन	118

कबीर साहब

भक्ति आन्दोलन की परंपरा में कबीर साहब गुरु रामानंदजी के मतानुयायी माने जाते हैं। इन्होंने निर्गुण भाव से प्रेरित होकर अपनी सारी रचनाएँ की हैं। उच्च श्रेणी के भक्तों में कबीर साहब का नाम बहुत आदर के साथ लिया जाता है।

कबीर साहब ऐसे समय में हुए जब अलौकिकता का प्राधान्य था। इनके नाम के साथ अलौकिक कथाएँ संबद्ध हैं। इनके जन्मसमय के विषय में विद्वानों में काफी मतभेद हैं। कबीर-पंथी लोग इनको अलौकिक महत्ता प्रदान करते हुए इनकी आयु 300 वर्ष मानते हैं। उनके मत से इनका जन्मसमय 1205 में और निर्वाण 1505 में हुआ। तथापि, उनके मन्थन में जो निम्नलिखित दावा है, वह अधिक प्रसिद्ध व माय है -

चौदह सौ पचपन साल गये, चंद्रवार एक ठाठ ठए।

जैठ-सुदी बरसायत को, पूरनमासी प्रगट भए॥

इनकी उत्पत्ति के संबंध में कई प्रकार की किंवदंतियाँ हैं। कहा जाता है कि स्वामी रामानंद के आशीर्वाद से ये काशी की विधवा ब्राह्मणी कर्म से उत्पन्न हुए। लज्जा व शर्म से वह इस नूतन बालक को लहरतारा काल के पाम फेंक आयी। नीरू नाम का एक जुलाहा उस बालक को अपने घर उठा लाया। उसीन उस बालक का पाला-पोसा। आगे चलकर यही बालक कबीर कहलाया। कुछ कबीर-पंथी महानुभावों की मान्यता है कि कबीर साहब का आविर्भाव काशी के लहरतारा तालाब में कमल के एक अति मनोहर पुष्प के ऊपर बालक के रूप में हुआ था। एक प्राचीन ग्रंथ में लिखा है कि किसी महान योगी के और प्रचीति नामक देवायना कर्म में भक्त राज प्रत्याद ही कबीर के रूप में सन् 1455 ज्येष्ठ शुक्ल 15 को प्रगट हुए थे। प्रचीति न उन्हें कमल के पत्ते पर रखकर लहरतारा तालाब में तैरा दिया था और नीरू नाम के जुलाहा दम्पति जब तब आकर उस बालक को नहीं ले गये, तब तत्र प्रचीति उनकी रक्षा करती रही। कुछ लोगों का यह भी मत है कि कबीर साहब जन्म से ही मुसलमान थे। बड़े होकर, उन्होंने स्वामी रामानंदजी के प्रभाव में आकर हिंदू धर्म की बातें जानी।

ऐसा प्रसिद्ध है कि एक बार पहर रात रहते ही कबीर साहब पचगगा घाट की सीढियों पर जाकर लेट गये। वहाँ से रामानदजी स्नान करने के लिए उतरा करते थे। स्वामी रामानदजी का पैर कबीर साहब के ऊपर पड़ गया। रामानदजी उसी समय झट राम राम कह उठे। कबीर साहब न इस ही दीक्षा प्राप्त गुरु-मत्र मान लिया। वह स्वामी रामानदजी को अपना गुरु बटन लगे। स्वयं कबीर साहब के शब्द हैं -

कासी में हम प्रकट भये ह, रामानद चेताये।

मुसलमान कबीर-पदियों की मायता है कि कबीर साहब न प्रसिद्ध सूफी मुसलमान फकीर शेष तक से दीक्षा ली थी। परंतु कबीर साहब ने शेष तक का नाम उतन आदर स नहीं लिया है, जितना स्वामी रामानदजी का। इनके मिव। कबीर साहब न पीर पीनाम्बर का नाम भी विशेष आदर स लिया है। इन बातों से यही सिद्ध होता है कि कबीर साहब न हिंदू मुसलमान का भेदभाव मिटाकर हिंदू भक्ता तथा मुस्लिम फकीरों का सत्संग किया और उनसे जो कुछ भी ज्ञान प्राप्त हुआ, उसे हृदयगम किया। कबीर साहब को पढ़ने लिखन का सुयोग्य अवसर नहीं मिला। फिर भी उ होने सत्संग और देशाटन पयाप्त रूप में करके ज्ञान और व्यावहारिक अनुभव बहुत ठोस और विस्तृत रूप में प्राप्त किया।

कबीर न अपन वारे में कहा -

कासी का म बासी वामन, नाम मेरा परखीना।

एक बार हरिनाम बिसारा, पकरि जोलाहा कीना ॥

भाई मेरे फौन बिनैगो ताना।

कबीर साहब अपन जुलाहेपन के लिए किसी प्रकार से धिञ्जित न थे। उहान डक की चोट पर कहा है -

तू वामन म कासी का जुलाहा, बुझी मोर गियाना।

सम्भव है जुलाहेपन के हीन भाव न उनकी ज्ञान की ओर प्रवृत्त किया हो। जाति के हीनताभाव को वह ज्ञान स सतुलित करना चाहते थे। जुलाहा जाति वामपथी योगियों के शिष्य परम्परा न थी। बगाल और बिहार के धुनिया, जो पीछे मुसलमान हो जान के कारण जुलाहे कहलान लगे, योगमत क मानने वाले ह। व 'जुमी कहलाते हैं और योग का ज्ञान उनकी पतृक परम्परा में आता ह। उत्तर प्रदेश में भी ऐसे जुलाहे हागे। कबीर साहब समझ उहीं म स थे। इस मत की पुष्टि म इतनी बात कहा जा सकती है कि असम में गोरखनाथ को भी जुलाहा मानते हैं।

कबीर साहब गृहस्थाश्रम सेवी थे । प्रसिद्ध है कि उनकी स्त्री का नाम सोई था । जनश्रुति के अनुसार कबीर साहब का एक पुत्र और एक पुत्री थी । पुत्र का नाम कर्माज था और पुत्री का नाम कर्माळी । इस छोटे से परिवार के पालन के लिए कबीर साहब को अपने करघे पर कठिन परिश्रम करना पड़ता था । यद्यपि कबीर साहब ने नारी की निंदा की है तथापि विवाह अवश्य किया है । उन्होंने अपनी पत्नी को संबोधित कर कई पद लिखे हैं—'बहुत कबीर सुनहु रे सोई, हरि बिन राखत हमे न कोई ।'

विवाह का स्पष्ट उल्लेख कबीरजी ने दिया है -

नारी तो हम भी करी, जाना नाहि विचार ।

जब जाना तब परिहारी, नारी बडा विकार ॥

कबीर की मृत्यु के संबन्ध में यह दोहा प्रसिद्ध है -

सबत् पद्रह सौ पद्यतरा, कियो मगहर कौ गोन ।

माघ सुदी एकादशी, रलो पौन में पौन ॥

साधारणतया लोग काशी में शरीर त्याग को महत्त्व देते हैं किंतु कबीर साहब ऐसी स्वतंत्र प्रवृत्ति के थे कि वह ऐसा सस्ता मोक्ष नहीं चाहते थे । यदि ईश्वर की उन पर कृपा है, तो सभी स्वानो पर (मगहर में भी) उनका मोक्ष होगा । तभी तो उन्होंने कहा है -

मगहर मरें मरन नहि पावें, अत मरें तो राम लेजावें ।

मगहर मर सौ गवहा होई, भक्त परतोत, राम सौ खोई ॥

क्या काशी क्या ऊसर मगहर, राम हृदय बस मोर ।

जो काशी तन तअँ कबीरा, राम कौन निहोरा ॥

बढाप में कबीर साहब के लिए काशी में रहना लोगों ने दूमर कर दिया था । यश और कीर्ति की उन पर वृष्टि सी होन लगी । कबीर साहब इसमें नग आकर मगहर चले गये । 119 वर्ष की अवस्था में मगहर में ही उन्होंने शरीर छोडा ।

कबीर साहब बडे सतोपी तथा स्वतंत्र विचार के थे । वह इतना ही धन चाहते थे कि खुद खा सके और द्वार में माघु भूखा न जाये । सतोप ही उनके स्वाभिमान का कारण था । परमाथ के लिए वह स्वाभिमान को भी बलिदान कर सकते थे -

मर जाऊ मागू नहीं अपने तन के काज ।

परमाथ के कारन भोहि न आवें लाज ॥

साधु सेवा और परमाय की भावना तो उनकी अत्युच्च थी। वह घर में रह कर भी फकीर थे।

कबीर साहब का मुख्य ग्रंथ बीजक है। इसके अतिरिक्त भी कबीर साहब 57 या 61 ग्रंथों के प्रणेता थे, ऐसा अनुमान है। सिखों के आदि गुरु ग्रंथ साहब में भी कबीर साहब की रचना है। सत शिरोमणि कबीर साहब का नाम उनकी सरलता और साधुता के लिए ससार में सदा अमर रहेगा। उनकी कुछ वाणिया इस प्रकार हैं -

(1)

या जग अघा, म केहि समुझावों ॥टेक॥

इक बुह होय उहँ समुझावों, सबहि मुलानां पेट के घघा ॥

पानी के छोडा पवन असवर घा, टरकि पर जस ओस के बुदा ॥

गहिरी नदिया अगम यह घरया, सेवनहार के पडिया फटा ॥

घर की वस्तु निकट नाहि आवत, दियना बारि के दूढ़त जघा ॥

लागी आग सकल बन जरिगा, बिन गुरु ज्ञान भटकिया बदा ॥

कह कबीर सुनो भई साधो, इक दिन जाय लगोटी शार बदा ॥

(2)

सतो, राह दोऊ हम दीठा ॥टेक॥

हिंदू मुसक हठी नहि माने, स्वाव सबन को मोठा ॥

हिंदू बरत एकादसि साधे, दूध सिंघाडा सेती ॥

अन्न को त्यागे मन नहि हटेके, पार न कर सगोती ॥

रोजा मुसक नमाज गुजार, बिसमिल बांग पुकार ॥

उनकी भिरत कहां से होइह, साधे मुरगी मार ॥

हिंदू दया मेहर को मुसकन, दोनो घट सो त्यागी ॥

ये हलाल ये झटका मार, आग बुनों घर लागी ॥

हिंदू मुसक की एक राहह, सतगुरु इह बतवाई ॥

कह कबीर सुनों हो सतो, राम कहेउ खुदाई ॥

(3)

झीनी-झीनी घीनी चदरिया ॥टेक॥
 काहे क ताना, काहे क भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया ॥
 ईड़ा पिगला ताना भरनी, मुद्यमन तार से बीनी चदरिया ।
 आठ कवल दल चरला डोले, पाच तत्त गुन तीनी चदरिया ॥
 साईं की सिपत मास दस लागे, ठोक-ठोक कै बीनी चदरिया ।
 सो चादर सुर नरमुनि ओढ़ी, ओढि के मली कीनी चदरिया ॥
 दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यो-की त्यो घर दीनी चदरिया ।

(4)

साधो, ई मुरदन क गाव ॥टेक॥
 पीर मरे, पगवर मरिगे, मरिगे जिदा जोगी ॥
 राजा मरिगे परजा मरिगे, मरिगे बंद ओ रोगी ।
 चदो मरि ह सुरजो मरि ह, मरि ह घरति अकासा ॥
 चौदह भुवन चौधरो मरि है, इनहुन के का आसा ।
 नोह मरिगे दसह मरिगे, मरिगे सहस अठासी ॥
 ततीस कोटी देवता मरिगे, मरिगे काल की फांसी ।
 नाम अनाम रहे जो सदा ही, दूजा तत्त न होई ॥
 कह कबीर सुनो भई साधो, भटक मर मति कोई ।

गायकाचार्य मिया तानसेन

संगीत सम्राट तानसेन का नाम सबत्र प्रसिद्ध है। आज म लगभग पात्र सी वर्ष पूर्व भारतीय संगीत क क्षितिज पर यह अनुपम नगत्र उदित हुआ। सुप्रसिद्ध इतिहासकार अबुल फजल न कहा था "पिछन एग हजार वर्षों में ऐसा गायक नहीं हुआ।" आज भी इस बात को सब एक स्वर स स्वीकार करते हैं। तानसेन ने संगीत क्षेत्र में ग्वालियर को मासृष्टिक स्थल का गौरव प्रदान किया। हिंदी कवि के रूप में भी तानसेन का महत्व कम नहीं है। संगीत और गायन के लिए तो यह नाम आज तक अद्वितीय है। कला का आदर्श हमारे देश में बहुत ऊचा माना गया है। कलापासक हमारे ऋषि मुनि देवतुल्य मान जाते थे। कला के माध्यम से इश्वरोपासना करके हम मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं।

तानसेन संगीत के साथ इतने समरस हो चुके थे कि आज भी संगीत को तानसेन के व्यक्तित्व से बिल्कुल भिन्न नहीं किया जा सकता। श्री कृष्ण के अनाय भक्त सुरदासजी की तानसेन सबधी निम्न उक्ति विचारणीय है -

मलो भयो विधि ना दियो शेषनाग के कान।

घरा मेरु सब डोलते तानसेन की तान ॥

ग्वालियर की पौराणिक तपोभूमि पर उन दिनों संगीतामृतनाद ध्वनि निरंतर गूजती थी। संगीत की शिक्षा दीक्षा का वाय महा होता था और यहां के संगीताचार्य संगीत प्रचार हेतु अयोय स्थानों पर जाते थे। इसी कारण ग्वालियर परम्परागत संगीत का प्रमुख केन्द्र माना जाता रहा है। तानसेन का जन्म ग्वालियर के निकट बेट्टे ग्राम में सन् 1563 के लगभग हुआ था। वह हिंदू कुल में और ब्राह्मण वंश में पैदा हुए थे। उनके पिता का नाम मकरद पांडे था। तानसेन का मूल नाम क्या था यह निश्चयपूर्वक नहीं बतलाया जा सकता, किंतु किंवदंती के अनुसार तन् त्रिलोचन, तनसुख अथवा रामतनु कहा जाता है। तानसेन उनका नाम नहीं था, यह उनकी उपाधि थी, जो उन्हें बाघवगढ़ के राजा रामचंद्र से प्राप्त हुई थी। यह उपाधि इतनी प्रसिद्ध हुई कि उसने मूल नाम को ही छिपा दिया। भगवान शंकर की उपासना के फलस्वरूप मकरद पांडे को तानसेन जैसे पुत्र की प्राप्ति हुई थी। पांच साल तक तानसेन मूक रहे, उसके बाद महेश्वर की कृपा से उनका कंठ धुला।

तानसेन के समय ग्वालियर पर कलाप्रिय नरेश मानसिंह का शासन था। मानसिंह तोमर के प्रोत्साहन से ग्वालियर सगीत कला का विख्यात केन्द्र बन गया था, जहाँ पर ब्रजू, बक्सू, कण और महमूद जैसे महान सगीताचाय और गायकगण एकत्र थे। उनके महयोग से ही सगीत की अनेकों विधाओं का आधिकार और प्रचार प्रसार हुआ था। तानसेन की सगीत कला मानसिंह तोमर द्वारा स्थापित सगीत विद्यालय में हुई। तानसेन को कलावत की उपाधि मिली थी। यह उपाधि महाराजा मानसिंह तोमर, द्वारा स्थापित सगीत विद्यालय के छात्र के रूप में उच्च कलाकार के सम्मान में उनके पुत्र विक्रमादित्य तोमर द्वारा, उन्हें दी गई थी। फाजलअली बख्वाल कृत "कुतिलियात ग्वालियर" में इसका उल्लेख है, जिसका उद्धरण आचाय बहस्पति ने अपने लेखों में दिया है।

बाल्यावस्था से ही सगीत और वैराग्य के प्रति तानसेन की निष्ठा थी। एक दिन वह गेरुआ वस्त्र धारण कर, हाथ में माछा लेकर ईश्वर का नाम लेते हुए घर से निकल पड़े। उस समय रीवा में महाराज रामचन्द्र राज करते थे। प्रातःकाल का समय था। वह मधुर कण्ठ से गीत गाते हुए राजपथ पर विचरण कर रहे थे। राजा ने उन्हें अपने प्रासाद में बुलाकर स्वागत किया। तभी से वह रीवा में राजा रामचन्द्र के माथ रहने लगे। धीरे धीरे उनके सगीत-माधुर्य की ख्याति भारत के कोने-कोने में फैल गयी।

तानसेन के सगीतकार बनने में वृन्दावन निवासी हरिदासजी महाराज का योग हाथ था। कहा जाता है कि तानसेन की उम्र अभी केवल दस वर्ष ही की थी, उन्हें एक बाग की रखवाली पर नियुक्त किया गया। उस बाग में हमेशा घासी हार्ति थी। तानसेन को चोरा को रोकने का कोई उपाय नहीं सूचा। तानसेन घासी को डराने के लिए शेर के गजन की नकल शुरू कर दी। वह नवलगोमी प्रतीक मान लगी जैसा सही रूप में शेर आया हो। इससे घासी का बाग में आना बन्द हुआ। सयोगवश एक दिन हरिदासजी उधर से जा रहे थे कि घासी शेर की आवाज सुनी। जब वह पास आये तो देखा एक दस वर्षीय बालक यहाँ यह ध्वनि निकल रही थी। हरिदासजी के मन में आया कि इस बालक को पास रखना चाहिए। मकरन्द पांडे से हरिदासजी तानसेन को पास रखे गये और कहा सगीत की शिक्षा दी। तानसेन हरिदासजी की वृन्दावन में उनकी कला परिपक्व हुई।

तानसेन ने प्रारम्भ में बेहट ग्राम में बकरिया चराने का काम किया। तानसेन के उपास्यदेव वनखण्डी में मिट्टी के महादेव थे। इनका नियम था कि रोजाना बकरी के दूध की धार शिवलिंग पर चढाई जाए। एक बार वह बीमार हुए, फिर भी इन्होंने अपना नियम नहीं तोड़ा। वह बकरी को कंधे पर लेकर वर्षा में निकल पड़े। नदी में राख आयी थी, फिर भी नदी पार कर गये और जाकर शिवलिंग पर बकरी के दूध निकोड दिए। शिवशंकर प्रसन्न हुए। जोर की आवाज हुई। तानसेन ने समझा कि शिवजी ने मुझे बरदान मागने को कहा है। इन्होंने षष्ठ स्वर के बारे में प्रायना की। महादेव से इन्होंने स्वर मिला। तानसेन ने राग अलापा। खड़ी मिट्टी की दीवार डोल उठी। यह झुकी हुई दीवार आज भी बेहट ग्राम में दिखाई देती है।

एक बार राजा रामचन्द्र बधेता शिवपूजन कर रहे थे। तानसेन ने उसी समय शिव भक्ति पद गाने शुरू कर दिए। इसी समय रीवा के शिवमंदिर का दरवाजा धुम गया। बधेता राजा ने इस चमत्कार से प्रभावित होकर मंदिर की भली प्रकार प्रतिष्ठा करवाई और तानसेन को सम्मानपूर्वक आश्रय दिया।

गुजरात यात्रा में तानसेन का पता चला कि वहा की नतकिया नाक में नथ पहनकर गाते गाते कुए में नथ नवाती हैं और तब उनके स्वरालाप से कुए का पानी ऊपर चढता है। तानसेन ने उन कुआ पर पनिहारिनो की खाली गागरो को स्वरालाप के चमत्कार से जल से भर दिया। माग में पापाण पिघल गया। तानसेन ने उस पिघले हुए पत्थर के स्थान पर मजीरे छोड दी। उस स्थान पर मजीरो की मुद्रा अंकित हुई।

कहा जाता है कि तानसेन के दीपक राग में वह शक्ति थी कि दीपक स्वयं जल उठते थे और उनका मल्हार राग सुनकर बादल घिर आते थे। दीपक राग आलाप करने पर वन में दावानल दहक उठती थी। अबबर भी दीपक राग सुनने का शौकीन था। दीपक राग सुनाने में वे पीडा अनुभव करते थे। इसी प्रवास काल में तोम और ताना नामक पनिहारियो ने मेघमल्हार आलाप कर बादलो से पानी बरसा दिया था। तानसेन की ध्यथा शांत हुई। तानसेन ने उन्हें अपने साथ चलने का आग्रह किया। उन्होंने अपन घर वालो से अनुमति मागी, इस पर उन्हें जीवन से ही हाथ धोना पया। इस घटना का तानसेन के जीवन पर बडा असर पडा।

कुछ विद्वानों का मत है कि भय मल्हार राग तानसेन ने अपनी कन्या सरस्वती और बाबा हरिदासजी की शिष्या रूपवती को सिखाया था, जिहौन मेघवृष्टि कर तानसेन के शरीर की दाह को शांत किया था ।

तानसेन की प्रसिद्धि सम्राट अकबर के कानों तक पहुंची । अकबर ने जलालुद्दीन कुर्ची को आगरा भेजा, जो अकबर के यहां ललित कलाओं का संरक्षक और संगीत का बड़ा पारखी था । वह रामतनु (तानसेन) के संगीत से इतना प्रभावित हुआ कि उसने उन्हें दो लाख रुपये का इनाम और तानसेन की उपाधि दी । इसके बाद तानसेन की गणना अकबर के नवरत्नों में होने लगी । यह भी कहा जाता है कि अकबर रोजाना कुछ समय निवालेकर तानसेन का संगीत सुना करते थे । अबुल फजल ने लिखा है कि 236 संगीतकारों को अकबर का संरक्षण प्राप्त था, फिर भी इनमें ज्यादा प्रसिद्धि और लोकप्रियता तानसेन के हिस्से में थी । तानसेन ने जहां संगीत के क्षेत्र में ग्वालियर को गौरव सीपा, वहीं हिंदी कवि के रूप में भी उसका महत्व कम नहीं । चार शताब्दियों पूर्व संगीत सम्राट तानसेन ने जिस स्वर साधना को साधारण पर अपने चरमोत्कृष्ट रूप में प्रतिष्ठित किया उसकी अनुगूज आज भी कलाकारों के संगीत में प्रतिध्वनित होती है ।

विद्यती के अनुसार तानसेन के विषय में एक शाहजादी से प्रेम और फिर उसके बरण करने के लिए धर्म परिवर्तन की घटना प्रचलित है । साथ ही अकबर की पुत्री मेहर्ला नसा से प्रेम और विवाह का उल्लेख मिलता है । तानसेन के वंशज भी मुसलमान बन गये । इस कलाकार का धर्म परिवर्तन प्रसिद्ध इतिहासकार स्मिथ ने एक ऐतिहासिक तथ्य के रूप में स्वीकार किया है । मिया तानसेन अकबर के दरबार में रहते हुए भी एक सच्चे वैष्णव के रूप में रहे । डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल ने अपने स्वीकृत शोधग्रन्थ 'अकबरी दरबार के कवि' में तानसेन के मुसलमान वंशज का रामपुर राजद्वार के आश्रय में पाना बताया है । इससे यही सिद्ध होता है कि तानसेन इस्लाम धर्म के लिए थे । वैसे तानसेन सभी धर्मों को समान भाव से देखते थे । वैसे भी अकबर के दरबारियों ने अकबर का दीन-ए-इलाही मत स्वीकार किया था ।

सम्राट अकबर काय केला करने पर भी जब स्वामी हरिदासजी को अपना नाम गायन के लिए राजी नहीं कर सके तो, वह स्वयं तानसेन के साथ वृंदावन गए । यहां पहुंचे तानसेन ने हरिदासजी का गमन गायन किया और जानबूझकर अंगुठ

रूप में गाया, जिससे उसे शुद्ध करने के लिए हरिदासजी को गाना पड़ा। इसमें अकबर को हरिदासजी का गायन सुनने को मिला। अकबर हरिदास भेंट की यह किंवदन्ती अपेक्षाकृत प्रमाणित है।

अकबर की राजसभा में तानसेन एक भगवदभक्ति सम्बन्धी पद विशेष रूप से गाया करते थे। कई बार उनके साथ अकबर ने ब्रज आदि भक्ति क्षेत्रों में आकर भगवान के लीला गायकों का संगीत सुना था। मेवाड़ की भक्तिमती मीराबाई का भी अकबर ने तानसेन के साथ दर्शन किया था।

तानसेन की भक्त सुरदासजी से घनी मित्रता थी। दोनों एक दूसरे की हृदय से सराहना करते थे। जीवन के अंतिम समय में तानसेन ने गोसाईं विठ्ठलनाथजी महाराज से दीक्षा ले ली थी। यत्न सम्प्रदायी वार्ता साहित्य में एक ऐसे प्रसंग का उल्लेख मिलता है। एक बार तानसेन गोसाईं विठ्ठलनाथजी से मिलने गये। उस समय गोविन्द स्वामी संगीतज्ञ जादि गायक उपस्थित थे। गोसाईंजी ने उनका गीत सुनकर दस हजार रुपये की थैली पुरस्कार में दी, साथ ही साथ एक कौड़ी भी रख दी। कारण पूछने पर उन्होंने तानसेन से कहा कि तुम बादशाह के कलाकार हो इसलिए उचित पुरस्कार देना आवश्यक था। पर हमारे श्रीनाथजी और नवनीत प्रिय के गायकों के सामने तुम्हारा गीत कौड़ी का है। गोसाईंजी की आज्ञा से तानसेन के सामने गोविन्द दाम ने विष्णुपद गाया। तानसेन ने गोसाईंजी से ब्रह्म सम्बन्धी ज्ञान लिया। अब वह प्रायः ब्रज में ही रहा करते थे।

तानसेन संगीत साधक तथा भक्त थे। संगीत से ही भगवान श्रीकृष्ण का आवाहन करके हृदय का विरह ताप शीतल किया करते थे। तानसेन की मृत्यु सन् 1589 में आगरा में हुई। मृत्यु से पूर्व, उन्होंने ग्वालियर जाने की इच्छा प्रकट की, किन्तु बीमारीकी हालत में उन्हें ग्वालियर न भेजा जा सका। अकबर ने उनकी मृत्यु के बाद उनकी इच्छा का आदर करते हुए उनका शव ग्वालियर भेजा। शाह मुहम्मद गौस के मकबरे के पास ही उन्हें समाधिस्थ किया गया।

तानसेन का मजार सादा बनाया गया है। इतिहासकार डॉ० अशोर्वादीलाल और श्री स्मिथ तानसेन के शव को दफनाया जाना ही मानते हैं। साथ ही श्री स्मिथ ने जेबुन फजल के 'अकबरनामा' का अनुवाद प्रस्तुत करते हुए "अकबर की ग्रेट मुगल" में लिखा है कि तानसेन मुसलमान हो गया था, उसे मिर्जा की उपाधि दी गई थी। तानसेन के कई पुत्र तथा एक पुत्री थी। पुत्रों में तानतरगखा, सुरतसेन और

बिलासबा के नाम प्रसिद्ध है । इन इतिहासकारों के कथना की उपस्थिति से यह प्रमाणित हो जाता है कि तानसेन का शव ग्वालियर में मुहम्मद गीस के मकबरे के पास ही दफनाया गया और उस पर भय समाधि अकबर ने बनवा दी थी । यह स्थल आज भी भारत के सगीतज्ञों के लिए महान तीर्थ स्थल बना हुआ है ।

तानसेन के पद

(1)

ज शारदा भवानी भारती विद्यादानी महायाकवानी तेहि ध्याव ।
 सुर नर मुनि ज्ञानि तोहि कू त्रिभुवन जानि को जानी मन इछा
 सोई सोई पुजायें ॥
 मगला सुबुद्धि दानी ज्ञान की निधानी बीणा पुस्तक धारनी
 प्रथम तोहि गाव ।
 तानसेन तेरी अस्तुत फहा लो सप्त स्वर तीन ग्राम राग रग लय आवें ॥

(2)

अब म राम राम कह टेरो ।
 मेरे मन लागो उर्नाहि सीतापति पद हेरो ॥ध्रु॥
 घरण सरोज श्रवण मन भेरो, ध्रुज अकुश सुख केरो ।
 तानसेन प्रभु तुम हो नायक इन तरवन पर फेरो ॥

(3)

घन घन मेरे भाग, भीर भए जाए लालन ।
 सब निस कहा जागे प्यार । स्थायी ॥
 आलसवन्त जमुहात जात, भक्ति गात ।
 साची कही बात, नद दुलारे ॥ अतरा ॥
 लटपटी पाग, खुल रही पंचन सो ।
 अधन पीक लीक धारें ॥ आभोग ॥
 तानसेन के प्रभु तुम वही नायक ।
 साध बोल साम के तिहारे ॥ आभोग ॥

(4)

तेरी गत आगत मो पे बरनी ना जात ।
 नारायन निरजन निराकर परमेश्वर ॥
 सप्तदीप शिवशकर ॥ स्थायी ॥
 शिवशकर अवतार को लेबत ॥
 हरत भरत बित देलत ।
 तेरी बिघ मन सबहीं ॥
 सकल स्त्री खुस वहीं नारी नर ॥ अतरा ॥
 तू ही जल थल, तू ही पशु पक्षी ॥
 तुही पवन पानी, तुही धरती अबर ।
 तुही चंद्र, तुही सूरज, बसो जो जल थल ॥
 तानसेन के प्राण उड़त ।
 जानत ह सब घर घर ॥ आभोग ॥

(5)

चरन सरन शंकराज कुवर के ।
 हम बिधि अबिधि कछु नहि समुसत, रहत भरोसे मुरलीधर के ॥
 रहत आसरे ब्रजमडल में, भुजा छाह तहवर गिरधर के ।
 तानसेन के प्रभु सुखदायक, हाथ बिवाने हम राधावर के ॥

(6)

कते दिन गए री अलेखे आली, हरि बिनु देखे ।
 उरजु तपइ बाके नल सिल करन, नन तपे बिनु देखे ॥
 पतियां न पठावत ह, आपु न आवत ह, रही री हीं धोखे ।
 तानसेन के प्रभु सब सुखदायक, जीवन जात परेखे ॥

गायकाचाय मिया तानसेन

(7)

या हा त घर-घर झगरयो, पसारयो ।
कसे जात निवारयो ॥
वे सब घेरो करत ह तेरी ।
रस ओ अनरस कौन मन पडि डारयो ॥
मुरली बजाइ करीं सब धोरी ।
लाज गई अपनी पति बिसारयो ॥
तानसेन प्रभु, सोई करी ।
जिहिव सब मुख पावें, त जीत्यो जग हारयो ॥

(8)

अब ही डारव रे, इडुरिया मेरी पचरग पाट की ।
हा हा करत तोरे पइया परत हों ॥
यह लालच मोहि गोकुल नगर हाट की ।
मेरे सग की डुरि डगरि गई ।
हों जकरी इहि घाट की ॥
तानसेन के प्रभु झगरोही ठायी ।
हसत लुगाई बाट की ॥

रसखान

जित प्रकार भारत समूचे विश्व म आध्यात्मिक गुरु व रूप म प्रसिद्ध रहा है, उसी प्रकार भारतवर्ष म ब्रज भूमि भक्ति व आध्यात्मवाद का केंद्र मानी जाती रही है। पुराणा में ब्रज भूमि का भारी महत्व रताया गया है। "ब्रज रज तजि अनंत न जाऊ" अर्थात् मैं ब्रज की पावन रज को छोड़कर अन्यत्र नहीं नहीं जा सकता। जहा तब ब्रज भूमि की सीमा है तथा उसमें जो नदी, वन, उपवन, गिरी आदि हैं, उनके प्रति थढ़ा भक्ति रघने और उन्हें पूज्य मानने स ही मानव का कल्याण है। ब्रज भूमि को भक्ति व मुक्ति भूमि बताते हैं। अस्ती कोस व ब्रजमंडल म स्थित किसी भी बूड तथा नदी मे स्नान करने तथा उसका पिनार भक्ति करने स श्री विष्णु भक्ति सुगमता स प्राप्त होनी है। उस अस्ती कोस के अंतगत ब्रज क्षेत्र में रहने वाले मुग, पत्नी, कीट, पतंग, जीव आदि ब्रह्मा, शिव, लक्ष्मी आदि देव स परिपूजित है। उन समस्त ब्रजवासियों के विष्णु प्रेम-सागर म मग्न होकर श्रीवृष्ण सदा विचरण करते रहते हैं। ब्रज भूमि ती ऐसी महिमा ब्रह्मपुराण में गाई गई है।

भगवान श्रीकृष्ण के भाग्य भक्तों म जनेक ऐसे जहिंदू भक्तों का भी अग्रणी स्थान रहा है, जिन्होंने अपना समस्त जीवन ही श्रीवृष्ण भक्ति म लगाकर भक्ति के इतिहास में स्वर्णिम पृष्ठ जोडे हैं। ऐसे भक्तों म रमखान भी हैं। रमखान का सम्बन्ध बादशाही वंश से था। वह दिल्ली के एक समद्वैतशाली पठान थे। उनका जन्म लगभग सन् 1640 विक्रमी में हुआ था। उनकी परमोत्कृष्ट विशेषता यह थी कि वह अपने लौकिक प्रेम को भगवत्प्रेम म रूपांतरित कर भगवान श्रीवृष्ण के अन्तर्गत भक्त बन गये थे।

एक समय की बात है। भागवत की कथा चल रही थी। उच्च सिंहासन पर भगवान श्रीवृष्ण का चित्र रखा हुआ था। उस चित्र को देखने में रमखान के मन में भगवान के दर्शन की अभिलाषा उत्पन्न हो गई। उन्होंने कथावाचक स भगवान श्रीवृष्ण के स्थान का पता पूछा और ब्रज की ओर चल पडे। मन में अन्त भावनाए थी। ब्रज रज का मस्तक स स्पर्श भगवती कालिन्दी के जल की शीतल उमत्त समीर मदमस्त कम्पन की अनुभूति श्याम-तमाल से अक्षी नवाजों की हरियाली का नयना म आलोकन होती ही वह अपनी सुध बुध

खो बैठे । ससार का भान सदा क लिए समाप्त हो उनके वे प्रति पूणरूपेण विराग हो गया । मन भगवान श्रीकृष्ण के चरणों में रम गया । उहो न वृंदावन के भक्तिके ऐश्वर्य की स्तुति की । उसक जड़ जीव चेतन और जगम में जात्मानुभूति की आत्मीयता देखी । पहाट, नदी और विहगा से अपने जन्मजात र वा सम्बन्ध जाड़ा और भावविभोर होकर गा उठे —

या लकुटी अद कामरिया पर, राज तिहू पुर का तजि टारौ ।

आठहु सिद्धि नवी निधि कौं मुख, नद की गाय चराम बिसारौ ॥

इन नयनों-ह 'रसखान' सदा, अज के बन बाग तडाग निहारौ ।

कोटि-ह हों कलि घोट के घाम, करील की कुजन ऊपर वारौ ॥

कैसा समपण भाव है ? प्रेम सुधा का निरंतर पान करते हुए वह ब्रज की शाभा देख रहे थे । ब्रज भूमि के दशा स रसखान जैसे प्रेमी सत का जीवन सफल हो गया था । भगवान के प्रेमरूप बचन से रसखान सदा के लिए बध गये थे ।

एक दिन का प्रसंग है । वह गोवधन पर श्रीनाथजी के दशा के लिए जा रहे थे । द्वारपाल ने देखा कि एक मुसलमान हिंदू मदि में जा रहा है । अब मदि भ्रष्ट हो जाएगा । छुआछूत के रोग ने उस मदि के सभी पुजारियों व सेवकों की ग्रस रखा था । उहें रसखान की अनन्य भक्ति की कल्पता न थी । भक्ति की मस्ती ता भक्त ही जानते हैं । द्वारपाल न धक्के देकर रसखान को मदि के आगन स निवाल दिया । कहते हैं, इससे भगवान् के हृदय को ठंम पहुंची । श्रीनाथजी के नत्र अगारे की तरह लाल हुए और इधर रसखान की स्थिति विचित्र हो गई । उहोंने अन्न-जल का त्याग कर दिया । भगवान के प्रति उहें पूरा भरोसा था । तीन दिन रहे हुए । भक्त के प्राण कल्प रहे थे । भगवान की अनन्य भावना के अनुसार रसखान पडे पडे सोच रहे थे —

देश विदेश के देखे नरेसन, रीक्षि को कोउ न ब्रूम करेगी ।

ताते निहें तजि जान गिरयो, गुन सौगुन औगुन गाठि परेगी ॥

बांसुरीवारी बडौ रिसवार हं, स्याम जो नेंकु सुदार डरेगी ।

साइली छल बही तो अहीर की, पीर हमारे हिये को हरगी ॥

भगवान श्रीकृष्ण के प्रति कितनी अनन्य श्रद्धा थी । हृदय की वेदना तो अनहम थी । आखिर नन्द-नन्दन भगवान श्रीकृष्ण ने साक्षाल दशन लिए । उसक बाद गोसाईं विठठलनाथजी ने उनका गाविदकुड में स्नान कराकर दीक्षा दी । रसखान

पूरे "रसखानि" हो गए । भगवान् के प्रति समर्पण के भाव का पूणरूप से उदय हुआ । रसखान की काव्य-साधना पूरी हुई । वह आजीवन ब्रज भूमि में रहे । भगवान की लीला काव्य में गाते रहे और ब्रजमंडल में विचरते रह । वह एक मात्र भगवान् के थे और सारे ब्रज में स्नेही, सखा, सम्बन्धी केवल भगवान ही उनके थे । पतालीस वष की अवस्था में उन्होंने अपनी देह लीला समाप्त की । भगवान् का अंतिम समय में भी उन्हें दर्शन हुआ । भगवान के सामने ही उनके प्राण चल बसे । मथुरा महावन में ममुनातट पर रमण रेती में निर्मित इस महान भक्त की समाधि आज भी श्रद्धा का केन्द्र है । उनकी इच्छा ब्रजमंडल की रज में ही रम जान की थी । भगवान के सामने, उन्होंने यही कामना व्यक्त की थी -

मानुस हों तो वही 'रसखान' बसों ब्रज गोकुल गाव के ग्वारन ।
 जो पसु ही तो कहा बस मेरों, चरो नित नन्द की धेनु मक्षारन ॥
 पाहन ही तो वही गिरि को, जो धरयो कर छत्र पुरदर धारन ।
 जो खग हों तो बमेरो करों, नित कार्तिकी कूल कदब की डारन ॥

भक्त के हृदय की उदात्त भावना का कितना सुंदर वर्णन है । प्रेम के साम्राज्य में भगवान की कृपा का दर्शन रसखान जैसे भक्ता के ही सौभाग्य की बात है ।

रसखान की वाणी

(1)

वन वही उनको गुन गाइ, और कान वही उन बँन सो मानी ।
 हाथ वही उन गत सर, अर पाइ वही जु वही अनुजानी ॥
 जान वही उन प्राण के सग, ओ मान वही जु कर मनमानी ।
 त्यों रसखानि वही रसखानि, जु ट रसखानि, सो है रसखानी ॥

(2)

द्वीपदी औ गनिका, गज, गीघ, अजामिल सो कियौ सो न निहारो ।
 गीतम रोहिनी कसे तरौ, प्रह लाद कौ कसे हरयो बुदल भारो ॥
 काटे को सोव कर रसखानि, कहा करि है रवि नन्द विचारो ।
 कीन की सक परीह जु, माखन चापनहारो है राखनहारो ॥

(3)

जा दिन तें निरस्यो नद-नदन, षानि तजी पर बगधन छटयो ।
 चाद बिलोकनि की निसि भार, समार गयो मन भार ने लूटयो ॥
 सागर की सरिता जिमि धावति, रोकि रह कुलको पुल दूटयो ।
 भषत भयो मन सग फिर, रमखानि सुरूप सुधा रस घूटयो ॥

(4)

कानन द अगुरी रहियो, जबहीं मुरली धुनि म'द बजै ह ।
 मोहिनी तानन सों रसखानि, अटा चढ़ि गोघन गहँ तो गहँ ॥
 टेरि कहीं सिगरे ब्रज गोगनि, काल्हि कोऊ कित्तनो समुझ हँ ।
 माई रो, वा मुख की मुसुबानि, समारी न जह न जँह न जँह ॥

(5)

खजन नन फस पिजरा छवि, नाहि रह धिर कसे ह माई ।
 छूटि गयो कुल षानि सखी, रसखानि, लखी मुसुबानि सुहाई ॥
 चित्र पढ़े से रह भेरे नैन, न बन कढ़े, मुल दीनी दुहाई ।
 कसो करी, जिन जाव अली, सब बोलि उठ, यह बावरी आई ॥

(6)

गाव गुनी, गनिवा, गधव ओ, सारद सेव सबगुन गाव ।
 नाम अनन्त गन'त गनेस ज्यो, ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पाव ॥
 जोगी, जती, तपती अद्य सिद्ध, निर'तर जाहि समाधि लपाव ।
 ताहि अहोर की छोहरिया छछिया भरि छाछ प नाच नचाव ॥

(7)

सेस, महेस, गनेस, दिनेस, सुरेसहु जाहि निर'तर गाव ।
 जाहि अनादि, अन'त, अखड अछेद, अभेद सुबेद बनाव ॥
 नारद से सुक व्यास रटै, पचि हार, तऊ पुनि पार न पाव ।
 ताहि अहोर की छोहरियो, छछिया भरि छाछ प नाच नचाव ॥

अमीर खुसरो

जनकवि के रूप में भारतीय इतिहास में अमीर खुसरो का नाम बड़े गौरव के साथ लिया जाता है। फारसी में लिखनेवाले हिंदुस्तानी कविता में अमीर खुसरो का स्थान सर्वोत्तम है। अमीर खुसरो फारसी में अत्यंत विद्वान, कवि तथा नयक थे। खुसरो विरसत सत नहीं थे, अनुरक्त सदगृहस्थ थे। अपने समय के बड़े सतों के साथ रहकर उन्होंने आध्यात्मिक तत्वा का अध्याय किया था। धर्म और आध्यात्म उनकी चेतना के मूल विषय थे। संगीत, कविता, इतिहास, सुफीवाद तत्वज्ञान आदि सभी विषयों का उनकी मेधा में स्पष्ट किया था। 'हफ्ते इकनीम' के रचियेता अमीन महमद राजी के कवतव्य के मुताबिक अमीर खुसरो ने करीब 99 ग्रंथ लिखे हैं। कविता की पांच शायरकामिया, उन्होंने बनाई थी।

अमीर खुसरो केवल सत कवि ही नहीं, बल्कि एक सदगृहस्थ, परोपकारी, सामाजिक व्यक्ति थे। डा० ईश्वरी प्रसाद ने अमीर खुसरो की कविता की प्रशंसा करते हुए लिखा है वह "कवियों के राजकुमार" हैं। साथ ही खुसरो की प्रशंसा करते हुए वह लिखते हैं कि "खुसरो कवि ही नहीं योद्धा भी थे और शिवाशील पुरुष भी। उसने अनेक युद्धों में भाग लिया था, जिसका वजन अपने ग्रंथों में किया है।" इतना कहना पर्याप्त होगा कि वह एक प्रतिभावान् कवि और गायक था, जिसकी कल्पना की उड़ान भाषा के माध्यम से विषयों की विविधता से संपन्न है। जिस प्रकार चकित कर देने वाली सरलता और सौंदर्य से वह मानवीय भावों और सवेदों को तथा रागात्मक प्रवृत्तियों को वर्णित करते हैं तथा प्रेम और युद्ध की चित्रावली प्रस्तुत करते हैं, वह उसे सावकालिक कवियों की पकित मंडलानों में समथ है। कवि होने के साथ खुसरो संगीताचार्य भी थे, जसा कि चौदहवीं शती के प्रसिद्ध नायक गोपाल नायक के साथ उसके बाद विवाद से ज्ञात होता है।"

अमीर खुसरो ने और कुछ भी अगर न किया होता तब भी सितार के जन्म दाता के रूप में भारतीय इतिहास में उनका नाम अमर है। भारतीय वीणा और ईरानी तम्बूरे का मिश्रण करके, उन्होंने एक वाद्ययंत्र बनाया, जिसे हम सितार के नाम से जानते हैं। एक विद्वत्ता के अनुसार प्राचीन मदन के आकार बदल कर, उन्होंने तबले को जन्म दिया। शास्त्रीय संगीत को "खयाल" प्रकार तथा सुर

अमीर खुसरो

की गहचई न उमरता हुआ तराना उन्हीं के योगदान है। पत्थर सौरभिय
कवाली के साथ भी कई बार इनका नाम जोड़ा जाता है।

अमीर खुसरो का वास्तविक नाम अबुल हसन यामीनुद्दीन खुसरो था। इनका
जन उत्तर प्रदेश के एटा जिले के पटियाली कस्बे में 1254 में एक तुर्क पिता
तथा भारतीय मुस्लिम माता से हुआ था। अमीर खुसरो के पिता का नाम अमीर
मुंजूद्दीन नटनू था, जो इन्सुल्तान अल्तमश से सम्बन्धित थे। अपनी प्रतिभा और
पौरुष के कारण उन्होंने पदाप्त बना अजित किया था। बारहवीं शती में मंगोलों
के आक्रमण में वागद जैसे शहर के नष्ट हो जाने पर इनके पिता आश्रयहीन होकर
भारत चले आए और दिल्ली में बस गए। उन समय दिल्ली के सत्त पर शम्सुद्दीन
अल्तमश था। अमीर खुसरो न अपनी योग्यता के कारण दरबार में अपना
उच्च स्थान बना लिया। अमीर खुसरो ने स्वयं अपने पिता की धर्मपरायणता,
विद्वत्ता प्रतिभा दयालुता संपन्नता आदि का वर्णन किया है। अमीर खुसरो का जन्म
भारत में हुआ वह स्वयं भारत भूमि को अपनी मातृभूमि कहकर पुकारते थे। कुछ
विद्वानों ने अमीर खुसरो के फारसी पांडित्य और ज्ञान के कारण इनका जन्म भारत
के बाहर बगदाद में होना लिखा है, जो ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर असत्य
सिद्ध होता है।

खुसरो कई दशकों तक दरबारों के सम्पर्क में रहे। लगभग पचास वर्षों तक,
उन्होंने राजवंशों की उयल पुथल देखी। एक बार मंगोल हमलावर उन्हें कैदी बना
कर ले गये थे। उनका जिंदा रह जाना भी एक सयोग की बात थी। शाही फौजों
के साथ उन्हें बार-बार युद्ध के मोर्चों पर जाना पड़ता था। मामलूक वंश के बादशाह
बलबन खिलजी वंश के जलालुद्दीन अलाउद्दीन और मुबारक तथा तुगलक वंश
के गयासुद्दीन के समय में वे दरबारी रह चुके थे। उन अराजकता के दिनों
में ऐसे विचित्र और सनकी राजाओं को खुश कर जीवित रहना अत्यंत दुष्कर
काय था। अमीर खुसरो ने सुसतान गयासुद्दीन बलबन के शासन काल में अपनी
प्रतिभा के कारण पर्याप्त प्रतिष्ठा प्राप्त की। कहा जाता है कि बलबन शूरवीर होने
के साथ माधु सती और विद्वानों का सम्मान भी करता था। उस समय के अनेक
उच्च कोटि के विद्वानों व्यक्ति और श्रुति प्राप्त सत बलबन से सबध रखते थे।
बलबन का बेटा शाहजादा मुहम्मद काय प्रेमी था। अमीर खुसरो ने शाहजादा
मुहम्मद की प्रशंसा में गीत लिखकर उसने पाव्य प्रेम का परिचय दिया है।

अमीर खुसरो की प्रमुख पुस्तकों में 'गुलशन-ए-गमक' प्रमुख है। विरातुंग मंगईन, पाणिना उफ गिजरगान तथा 'शत शरी का रामायण, नूर गिफार आदि। अमीर खुसरो की रचनाओं का सम्बन्ध अध्यात्म, प्रेम, शृंगार और धर्मशास्त्र का भाव है। अमीर खुसरो की शब्द प्रगल्भ कृति जिसे प्रेम तथा क माय आध्यात्मिक रूपक भी कहा जाता है अलाउद्दीन क बेटे गिजरगान और दयल गानी की प्रेम कहानी है। खुसरो ने अने उच्चकोटि क शौचानो भी इमी काल में लिखे गए, जो अपनी कीर्ति क कारण, उन्होंने इतिहास क शोच भी प्रवेश किया था। नूरु सिफिहर नामक मसनवी में उन्होंने सत्वासीत इतिहास की भारी प्रस्तुत की। ये पुस्तक उन्होंने अपनी नूदावस्था में लिखी जिसमें उन्होंने हिन्दुस्तान की तारीफ की है। भारत की धरती क प्रति कवि का प्रेम झलकता है। अमीर खुसरो फारसी क प्रवाद पहिल और अपने समय क श्रेष्ठ कवि थे। उनका फारसी के भाष्य अरबी हिन्दी तुर्की आदि भाषाओं पर भी अधिभार था।

अमीर खुसरो ने बादशाह के जीवन क उभार उड़ाव देखे, जिनमें गवम अर्धिन कारुणिक दृश्य था पिना के द्वारा पुतो को अधिकार में बंशित करना और बादशाह का अपनों ही तथा कथित विश्वासपात्रों द्वारा मारा जाना। अलाउद्दीन की जीवन सीजा बीमारी से समाप्त हुई। कुछ इतिहासकारों की मान्यता है कि मलिक काफूर ने राज्याधिकार प्राप्त करने के लिये परिवार का नाम दिया और स्वयं भी वह मौत के पाट उतार दिया गया।

अमीर खुसरो ने अनेक सम्बन्ध निजामुद्दीन औलिया से बनाए रखे और आध्यात्मिक जीवन में शांति प्राप्त करने में प्रयत्नशील रहे। निजामुद्दीन औलिया अमीर खुसरो के गुरु थे। निजामुद्दीन औलिया स्वयं सूफी सत होने के कारण कभी किसी के दरवाजे में नहीं गये। अलाउद्दीन खिलजी एक बार मित्तने की इच्छा प्रकट की तो औलिया ने जवाब भेजा "मेरे घर क दो दरवाजे हैं, सुलतान अगर एक स प्रवेश करे तो मैं दूसरे से बाहर निकल जाऊंगा।"

दिल्ली की गद्दों पर गयामुद्दीन तुगलक बैठा जो इनके गुरु को नहीं चाहता था। उसने निजामुद्दीन औलिया से धन वापस मागा, जो शाह खुसरो ने उन्हें सम्मानपूर्वक भेंट किया था। उन्होंने वह सारा धन खैरात कर दिया था। बादशाह ने सदेश भेजा कि मेरे दिल्ली पहुंचने क पहिल निजामुद्दीन औलिया

अमीर खुसरो

दिल्ली छोड़कर चले जाए। औलिया ने इसके उत्तर में कहा था। “हमने दिल्ली दूर अस्त” — अभी दिल्ली बहुत दूर है। और, सचमुच बादशाह दिल्ली नहीं पहुँच सका। खोमा टूटकर गिरने से उसकी रास्त में ही मृत्यु हो गई।

अमीर खुसरो के लिए दुख दर्पण यह रहा कि वह बादशाह के साथ लखनौती गए हुए थे और उसकी अनुपस्थिति में ही गुरु निजामुद्दीन औलिया का 95 वर्ष की आयु में देहावसान हो गया। गुरु के शोक समाचार से अमीर खुसरो को गहरा आघात पहुँचा। अमीर खुसरो ने गुरु के निधन पर एक दोहा कहा, जो काफी प्रसिद्ध है। शोक विक्ल स्थिति में उनसे मुख से दोहे के रूप में जो उद्गार निकले वह खड़ी बोली हिन्दी का प्रारम्भिक श्रेष्ठ उदाहरण माना जाता है -

गोरी सोव सेज पर मुख पर डारे केस ।
चल खुसरो घर आपने, रैन भईं चहुँ देस ॥

अपने आध्यात्मिक गुरु निजामुद्दीन औलिया की मृत्यु के बाद अमीर खुसरो का मन मासरिक प्रपंच से विरक्त हो गया था। अपने गुरु की मृत्यु के कुछ ही महीने बाद सन 1325 में अमीर खुसरो का देहात हुआ। उनका पार्थिव शरीर निजामुद्दीन औलिया की समाधि के पास ही दफनाया गया।
खुसरो के आध्यात्मिक काव्य का उदाहरण -

राग औनपुरी—ताल दीपचंदी

बहुत रही बायल घर दुलहिन, चल तेरे पी नें बुलाई ।
बहुत खेल खेली सखियन सो, अत करी लरकाई ॥
हाय घोय के वस्तर पहिरे, सब ही सिगार बनाई ।
बिदा करने को कुटुब सब आये, सिगरे लोग लुगाई ॥
चार बहारन डोली उठाई, सत पुरोहित नाई ।
चले ही बनेगी होत कहा ह, ननन नीर बहाई ॥
अत बिदा ले चलि ह दुलहिन, काहू की कछु न बसाई ।
सोज खुशी सब देसत रह गये, मात पिता और भाई ॥

मोरि बीन सग सगन धराई, घन घन तोरि हं लुबाई ।
 भिन मांगे मेरी मगनी गो बीही, पर पर बी ओ ठहराई ॥
 अगुरी पबुरि मोर। पबुघा भी पकरे, बगना अगुठी पहराई ।
 तोसा के सग मोहि कर बीही, साज सकोष मिटाई ॥
 सोना भी बीहा रूपा भी बी हा बाबुल बिस दरियाई ।
 गहेल गहली बीसति भांगन भें, अघानब पकर बटाई ॥
 घंठल मतमल बपरे पटनाये, बेसर सितर सगाई ।
 'लूसरो' घली समुरा रो सजनी, सग गहीं बोई जाई ॥

रहीम

हिंदी साहित्य के क्षेत्र में अब्दुरहीम खानखाना को लागू प्रायः हिंदी कवि के रूप में जानते हैं। रहीम मध्ययुगीन भारत की एक अनुपम विभूति थे। कलम और तलवार दोनों पर उनका समान अधिकार था। अब्दुगी नवरत्नो में से वे एक प्रमुख रत्न थे। शासक सेनानायक तथा कूटनीतिज्ञ के रूप में उन्होंने मुगल साम्राज्य को बहुमूल्य सेवाएँ प्रदान कीं। रहीम के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता थी उनका हिन्दी, हिंदू और भारत के प्रति अनन्य प्रेम। उनकी हिन्दी रचनाओं ने इन्हें जमर कर दिया। वे सही रूप में भारतीय थे। समोधर्म, जाति और भाषा के प्रति उनका समान भाव था। डॉ० यदुनाथ मरकार के शब्दों में, 'रहीम के दरबार में दो विभिन्न साम्प्रदायिक धाराएँ, हिंदू तथा मुस्लिम फारसी तथा संस्कृत का उस समन्वित सरिता में मेल हुआ जिसका जल आज भी भारत देश का अभिसिंचित कर रहा है। भारतीय इतिहास में उनका स्थान इसलिए सुनिश्चित है कि उन्होंने अरबों की साम्राज्य भारतीय जातिव्यतिरिक्त की नीति का कम-से-कम साम्प्रदायिक पक्ष में पूर्ण किया। रहीम स्वयं तो जानमान साहित्यकार थे ही साहित्यकार कविता और विद्वानों के लिए विश्वविख्यात दाता भी।'

कवि रहीम बरम खां खानाखाना का पुत्र थे। प्रामाणिक दस्तावेजों के आधार पर इनका जन्म जमाल या मेवाती की छाटी पुरी, केरल की राजधानी दिल्ली में मिनर सन् 1613 का हुआ था। मुकुन्द तथा डॉ० रामकुमार वर्मा ने इनका जन्म वर्ष 1613 के रूप में, 'नेमिन स्वर्गीय प० माया शंकर याचिय न मुशो दको' के रूप में जन्म कुल्को या विश्लेषण कर और उसे उद्धृत करके (संस्कृत 1613) की प्रामाणिकता सिद्ध कर दी है।

रहीम के शैक्षणिक प्रथम चार वर्ष के दस्तावेजों में ही होहार वास्तव में बरम खां पूर्ण मुगल के रूप में उल्लेख मिले हैं। परन्तु भाग्य का यह वास्तविक रूप ही है कि यह वास्तविकता साक्षात्कार तैयार होना नगण्य है। बरम खां के पुत्र रहीम के रूप में उल्लेख मिले हैं।

उहाने मक्का जाने की अनुमति मागी। अकबर ने अनुमति दफर यात्रा के समुचित प्रबंध कर दिए। बैरम मरिखार मरगा रवाग हुए। मरगत 1617 म मक्का गते समय गुजरात होकर जा रहे थे। उग समय गुजरात की राजधानी पाटन थी। वहा बैरम कुछ दिन रुक गए। एक दिन ग्राम के समय वहा के प्रसिद्ध सरोवर "सतस्त्रालिग" म वह नीरा विहार के लिए गए। जलविहार के बाद ज्या ही वह नाव से उतर रहे थे कि मुखारख लोहाणी नामक एक अफगान ने उनकी शीठ म छुरा भाग कर उनका काम तमाम कर दिया। इस प्रकार 4 वष की अल्प आयु मे ही इस प्रतिभावान कवि का अपने पिता की छत्रछाया से हाथ धाता पडा।

मामूम रहीम तथा उनकी विधवा मा के लिए यह समय अत्यंत सखट का था। कुछ स्वामिनिष्ठ दरदार मुहम्मद जमीन दीवाना आदि माय थे। वे इहें अहमदाबाद से जागरा ले आया। अकबर की दरम की निमम हत्या का समाचार मिल चुना था। जिगु रहीम अकबर के दरवार म उपस्थित हुआ। उसे देखत ही अकबर भाव विभार हा उठा। उसे अपना फरजद (पुत्र) घोषित कर उमरा सारा दायित्व अपने ऊपर लिया। बाक रहीम विद्या के प्रति विशेष रबि देने लगा। रहीम की प्रारभिक शिक्षा अरबी, फारसी और तुर्की म सम्पन्न हुई। कालांतर मे वे इन भाषाजा के प्रनाड पठित बन गये। अकबर ने रहीम की शिक्षा की व्यवस्था अच्छी तरह से की थी और उसी काल म उन्हें मिर्जा या की उपाधि से विभूषित किया गया। रहीम ने म्मारह वष की अल्प आयु म ही काव्य रचना प्रारम कर दी थी। रहीम की काव्य गगा निरंतर गति से बहने लगी।

अकबर ने रहीम की अदभुत प्रतिभा से प्रभावित होकर अपनी धाय जीजी माहम अगा की बेटी एव खाने जाजम की सहिन महावानु वेगम से उका विवाह कर दिया। गुजरात की मुगत साम्राज्य म मिलाने के लिए अकबर की ओर से रहीम ने अद्भुत शोय का प्रवशन करके अकबर को प्रभावित किया। अकबर ने प्रसन्न होकर सवत् 1629 म पाटन की जागीर रहीम को प्रदान की। गुजरात में जाता द्वारा उपद्रव करने पर रहीम का गुजरात भेगा गया। विजया होकर लौटने पर सवत् 1633 को उहे गुजरात का सूबेदार बनाया गया। सवत् 1635 म कुम्भलनर के जजेय मिले का जीत कर रहीम ने अपनी कायकुशलता का परिचय दिया। सवत् 1636 मे सम्राट अकबर ने उहें मीर अज का पद प्रदान किया। गुजरात मे मुजफ्फर मुलतान द्वारा विद्राह शुरू करने पर फिर से रहीम को गुजरात म विद्राह दमन के लिए भेजा गया। सवत् 1640 म

रहीम ने राजा का परामर्श करके जाना म भगा दिया। अन्तर नयुग हाथर इह पत्र हजारी भमदरग नया छानघाना जमे महत्वपूर्ण घिताव दिए। बनीन का पत्र जानगत गामन बाल म अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता था। अन्तर के नवगना म म टागमन की मरुपु होने के बाद सम्बत 1646 म यह पद रहीम का प्रदान किया गया। सवत 1663 म अन्तर की मृत्यु हुई। मनोम नहागीर मिहामन पर बैठा।

मलिन अम्बर द्वाग दक्षिण म विद्राह शुरु करन पर रहीम न दक्षिण म प्रस्थान किया। परंतु अम्बर की विजय होने व कारण रहीम का राजघाती म बना लिया गया। कुछ समय बाद पुन कन्नौज और बालपी का विद्राह गान करके जाहजादखुरम व साथ दक्षिण म प्रस्थान किया। गोनबुडा तथा बीजापुर के मुलतान न मुगल साम्राज्य व अस्तित्व को स्वीकार कर लिया। इनम प्रमत्त हाथर वादाहा ने रहीम का मान हजारी भमबदार बना दिया।

रहीम व कार म कई जनश्रुतिया प्रचलित हैं। उनका सम्पक रीवा नरेश और गाम्नामी तुनसीदास मे भी था। हिन्दी साहित्य के इतिहास मे रामचद्र जुक्त जी ने एक किंवदन्ती का उल्लेख किया है। घानजाना जब दीन-दशा मे थे, पत्र पाचक उनके पास आया। उहान उस निम्न दोहा लिखकर रीवा नरेश के पास भेजा —

मैं रहीम सुख-दुख सहत बड़े लोग सह साति ।
उबत चद जेहि भाति सो, अथवा ताही भाति ॥
रहिमन विपदा हू भती, जो घोरे दिन होय, ।
हित अनहित या जगत में, जानि परत सब कोय ॥
चित्रकूट में रहि रहे, रहिमन अवघ नरेश ।
जा पर विपदा परति हूँ, सो आवत यहि देश ॥

इस दोहे का प्रभाव रीवा नरेश पर इतना पडा कि उहोने यात्रा को एक लाख रुपया देकर सम्मान पुत्रक विदा किया।

एक जनश्रुति यह भी है कि एक गरीब ब्राह्मण था। उसके पास धन का जभाव था। कुछ मदद की दृष्टि से वह ब्राह्मण तुनसीदासजी के पास आया। तुनसीदासजी के पास भी क्या था। वह अकिंचन ही थे। उन्होंने दाढ़े की एक पंक्ति लिखकर रहीम के पास भेजा।

“सुरतिय नरतिय नागतिय, यह जानत सब कोय”

रहीम ने ब्राह्मण को काफी धन देकर विदा किया और दोहू को निम्न प्रकार से पूरा किया -

गोद लिए हृतसी फिरे, पुत्तसी सो मुत होय ।

रहीम को ललित बनाया से भी बड़ा प्रेम था। सगोत आर चित्रवला क व पारखी थे। एक बार एक चित्रकार न उहे एव चित्र भेंट किया। उस चित्र म एक सुदरी का दश्य था। सुदरी स्नान करन के बाद पुर्सी पर बठार एक ओर झक्कर अपने बाला को पटारार रही थी। दामी झाव मे राड राडकर उमका पर जो रही थी। चित्र को देखकर रहीम मुग्ध हो गए। चित्रकार को पाव हजार रुपये का इनाम दिया। चित्रकार न रहीम से कहा आपकी चित्र म क्या विशेषता लिखाई दी। रहीम न कहा, "इम मोहिनी के चेहर पर जा भाव और हांठा पर जा मुस्फान है वह अत्यंत आकषक है। इसका कारण समझन क लिए उसके पैरा की ओर देखना चाहिए जहा गुदगुदी हा रही है।" चित्रकार उत्तर मुनकर मुग्ध हा गया। और मदा के लिए वह रहीम का दास बन गया।

जिस रहीम का जीवन पहल सुखमय व्यतीत हुआ था, उसी रहीम का अपमान विरस्कार महने का समय जा गया। जहागीर के काल म धीरे धीरे मूरजहा का हस्तभेप शुरू ही गया। महावत खा को अपने पक्ष म करन के लिए रहीम का खानखाना पद महावत खा को दिया गया। इससे उत्तजित होकर शाहजादा और रहीम दोना ने विद्रोह कर दिया। जहागीर न विद्रोह का दमन किया और रहीम पर विपत्तिया के पहाड टूट पडे। इम आपत्ति मे रहीम दर-दर ठोफे खाता रहा। रहीम न इसका बणन स्वय ही किया है।

समय दिशा कुल देखि क, सब करत अपमान ।

रहिमन दान अनाय फी, तुम बिन फी भगवान ॥

अ त म दीन होन अवस्था मे चारो धार से निराश होकर रहीम चित्रकूट मे रहने लगे। ईश्वर कृपा से जहागीर न पुन प्रमग होकर सबत 1682 मे रहीम को फिर से खानखाना की पदवी एव मसज पद प्रदान किए। रहीम का पारिवारिक जीवन सुखमय नही था। खलावस्था मे ही पिना की मृत्यु और जने जीवनकाल मे ही पुत्री, दामाद एक ताना पुत्रा का देहात उहाने देखा। सबत 1665 म बगम महाबाग का देहात हा गया। कहा जाता है कि

सन् 1661 म महाराजा ने पाषाणा को शत्रुता व काग्न उनके पुत्र दरावखा का सिर काटकर उस एक थाल म डगर तरबूज के नाम से पानखाना को भेजा था। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पारिवारिक जीवन सुखमय नहीं था। रहीम की दाहावली म इस विषम अवस्था और कटु अनुभव का निरूपण स्थान स्थान पर हुआ है।

मृत्यु के कुछ दिन पूर्व राजहान इन पर अपने स्वायवश विशेष प्रेम दिखाया। उन्हें पुन सनापति बनाकर विद्रोही महावत या का दवाने व लिए दिल्ली की आर भेजा। बेगम ने उम समय उन्हें बारह लाख रुपये की नकद राशि, ऊट घोड़े हाथी की सेना तथा अजरमर का समस्त सूबा प्रदान करके उनकी बहुत बड़ी इज्जत की। यही उनका अंतिम सम्मान तथा अंतिम अभियान था। भगवान न इन्हें विजय भी प्रदान की थी।

एक और महत्वपूर्ण घटना इस प्रकार है। हदी घाटी के युद्ध म रहीम ने भाग लिया था। इनकी पत्नी व डेरे पर राजपूता का अधिकार हा गया था। राजपूता न अपनी परम्परा के अनुसार महाराणा प्रताप के आदेश स इन युवतिया की सम्मान रहीम का सौंप दिया था। रहीम न इस उपचार का बदला अंतिम क्षण तक चुकाया। महाराणा प्रताप के त्याग और शौर्य की प्रशंसा मुगल दरबार म केवल रहीम ही करत थे।

रहीम धार्मिक सहिष्णुता तथा सांस्कृतिक समन्वय का आदर्श था। उनका कृष्ण प्रेम अनन्य था। एक श्लोक म उहाने भगवान श्रीकृष्ण को अपना हृदय समर्पित किया। वे कहन हैं हे प्रभा ! जापका घर क्षीरमागर म है। रत्न माणिक-मोती की बनी नहीं। लक्ष्मीजी आपकी पत्नी हैं। अत रुपये पैसे की जापको दरकार नहीं। आप सम्पूर्ण पृथ्वी के स्वामी हैं। अत जमीन-जायदाद जादिकी भेंट देना व्यय है। ता फिर मैं आपका क्या समर्पित करू ? हे प्रभो ! आप व पास एक बनी है और वह यह कि आपका हृदय राधारानी चुरा ले गई है। अत मरा हृदय जापके चरणा म समर्पित है। इसे ग्रहण कीजिए। इसम आपका भी भला और मरा भी। स्वामी मरा हृदयहीनता की स्थिति म ही होगा और स्वामी यदि हृदयहीन न हो तो सेवन सत्र कुछ स्वय ही पा जाता। रहीम की पत्नी को मृत्यु लाहौर म हुई थी और रहीम की दिल्ली मे। इसीलये रहीम को दिल्ली म दफनाया गया। यह मन्बरा रहीम ने अपनी प्रिय पत्नी माहानू के लिए बननाया था। मयूरा रोड पर स्थित निजामुद्दीन

को बरसो म शाही जलनाल क पाम रहीम का मकबरा है। हरी भरी वाटिका मे यह लाल रंग का मकबरा आज भी रमणीय है।

रहाम क प्रमुख ग्रथा क नाम रम प्रकार हैं दाहावली, नगर शोभा, वरय नायिका, भेद मदनष्टक व फुटकर छंद, शृंगार सारठा, रहीम काव्य, छटे तीतुवम, शतरज शतर वाकियात वावरी का फारसी अनुवाद, तुजक वावरी का फारसी अनुवाद। रहीम कई भाषाआ के पंडित थे। रहीम की भाषा आज भी राष्ट्रीय एकता के लिए आदर्श है। यदि इनकी दाहावली म ब्रजभाषा का मधुर, सरस और सुबोध रूप देखन को मिलता है, तो वरय मे उनकी अवधी का सरस मधुर स्वरूप विकसित हुआ है। देखिए रहीम साहित्य की श्लक -

(1)

राग शुद्ध कल्याण ताल तिताला

छवि आवन मोहन लाल की ।
 काछिनि काछे कलित मुरली कर, पोत पिछोरा सालकी ॥
 ब्रक तिलक केशर को कोने, दुति मानो विधु बाल की ।
 बिसरत नाहि सखी मो मन ते, चितवनि नयन बिसाल की ॥
 नोकी ह्वनि अधर मुधरनि की, छवि छोनी सुमन गुलाल की ।
 जलसो डारि दियो पुरइन पर, डोलनि मकुता मालकी ॥
 आप मोल बिन मोलनि डोलनि, डोल निमदन गोपाल की ।
 यह सुहृप निरख सोई जान, या रहिम के हाल की ॥

(2)

राग पटमजरी-ताल तिताला

कमलदल नननिकी उनमानि ।
 बिसरति नाहि सखी, मो मन ते म द म द मुसुक्कानि ॥
 यह दसननि-दुति चपलाहूते महावपक चमकानि ।
 धमुधा की बस करी मधुरता, मुधा पगी बतरानि ॥
 चढी रख चित डर बिसाल की मकुटमाल यह रानि ।
 नरय समय पीताम्बरहू की, फहरि फहरि फहरानि ॥
 अनुदिर शीव दावन ब्रज तें, आवन आवन जानि ।
 अब रहीम चित नटरति ह, सकल श्याम की बानि ॥

आलम

एक ऐसे युगप्रवर्तक कवि जो रीतिनालीन "रीतिमुक्त" काव्य परम्परा के आधारस्वम्भ माने जाते हैं, हम उन्हें आलम के नाम से जानते हैं। कनिबर आलम को जन्मतिथि आज तक भी निश्चित नहीं हासरी है। केवल रामचन्द्र शुक्ल इनके रचना काल का सबसे 1740-1760 के लगभग मानते हैं। वैसे भारतीय विद्वाना न जन्म प्रकार म कवि आलम के अस्तित्व पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है, परंतु जन्मतिथि निश्चित करने के बारे में सभी लोग मौन हैं। कवि आलम के काल का लेकर विद्वाना में आज तक काफी मतभेद पाया जाता है। आज तक उन मतभेदों को समाप्त करने का काय नहीं हुआ है।

विद्वाना के मतभेदों के दो बग हैं। एक बग यह है जिसमें शिवसिंह मिश्रबघु, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डॉ० श्यामसुन्दर दास, जो आलम नाम के दो कवि होने का जिक्र करते हैं। प्रथम कवि अकबर के समकालीन या तथा द्वितीय कवि बादशाह औरंगजेब के पुत्र मुअज्जम शाह के आश्रित थे। दूसरे बग यह कहना है कि आलम नामक केवल एक ही कवि हुआ है, दूसरा नहीं। शिवसिंह ने अपने "शिवसिंहमराज" में मुअज्जम शाह की प्रशंसा में निम्न छन्द लिखा है -

जानत औली किनायत को, जे निसाफ के माने कहहे ते चीहे ।

पालत हो इत आलम को उतनी के रहीम के नाम को लीहे ॥

मोजमशाह तुम्हें कविता करिये को दिल्ली पति है वर दीहे ।

काबिल है ते रहे किनहू कहू काबिल होत है काबिल कीहे ॥

इस छन्द के आधार पर आलम नाम के दो कवि का अस्तित्व शिवसिंहजी ने माना है। परंतु द्वितीय बग के जालोचका का मत है कि इस छन्द में प्रयुक्त आलम शब्द गमर काही है। जय तक यह सिद्ध नहीं हो जाता कि दूसरे आलम का को अस्तित्व नहीं है, तब तक हिन्दी साहित्य में दो आलम स्वीकृत रहेंगे। हम परम्परा के अनुसार दिल्ली का एक स्वच्छन्दतावादी प्रेमोन्मत्त कवि से बचिन करना नहीं चाहते।

कवि आलम के बारे में बहुत सी जनश्रुतियाँ पायी जाती हैं। एक जनश्रुति का जिक्र हिंदी साहित्य का इतिहास तथा अन्य ग्रंथों में पाया जाता है। वह जनश्रुति इस प्रकार है। एक बार शेख नामक एक रंगरेजिन को आलम ने अपनी पगड़ी रंगने के लिए दी। पगड़ी के एक सिरे पर एक कागज का टुकड़ा बंधा हुआ था। आलम का स्मरण नहीं रहा। उसमें बसो ही पगड़ी द दी। शेख ने रंग में डालने से पहले पगड़ी का रखा, एक कागज का टुकड़ा बंधा हुआ था, उसमें निम्न पंक्ति लिखी थी। -

कनक छरी सो कामिनी काहे को कटि छोन ।

रंगरेजिन शेख ने उसका पंक्ति पढी और उसे पूरा करके वापस दिया।

शेख ने निम्न पंक्ति लिखी थी -

कटि को कचन काटि विधि, कुचन मध्य धर दोत ॥

कहा जाता है कि आलम जाति से ब्राह्मण थे। शेख रंगरेजिन के वाक्य प्रतिभा ने उन्हें ऐसा आकृष्ट किया कि जाखिर इहान शेख को अपनी धर्मपत्नी बना लिया। शेख से एक पुत्र हुआ, जिसका नाम जहान था।

शेख जल्द ही जाखिर ब्रवादी थी। एक बार शाहजादा मुज्जम ने मजाक के साथ शेख से पूछा, 'क्या आलम को पत्नी आप ही हो?' शेख ने तट से सवाल का जवाब दिया 'हां, जहापनाह' जहान को माँ मैं ही हूँ।'

डॉ० जगदीश गुप्त का मत है कि शेख नाम आलम का ही था। उह इस प्रकार का मत प्रतिपादन करने का कारण यहाँ प्रतीत होता है कि आलमकलि प्रथम में कुछ छंद शेख के भरो पाये जाते हैं। अगर यही मान लिया जाय कि शेख नाम आलम का ही था तो एक ही कवि का नाम से रचना करने की जरूरत ही क्या थी? इस विषय में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मत ठीक प्रतीत होता है। उनका कहना है कि शेख नाम से उरल०य पद आलम की पत्नी द्वारा रचित हैं।

कवि आलम के समय में उत्तर भारत में हिंदी का निर्माण हो रहा था। देव, बिहारो, मतिराम जादि कवि तलित साहित्य की रचना में निमग्न थे। देश के कितने ही राजाओं के आश्रय में रोतिकालीन साहित्य का निर्माण हो रहा था। नवशिय बणन प्रेम और प्रणय को सरस कविता का अभ्युदय इसी युग में हो रहा था। आलम मनमोजी और प्रेमो कवियाँ में से थे। रोतिकाल की स्वच्छंद शृंगार धारा में इनका महत्वपूर्ण योग माना गया है। कवि आलम के कुछ सर्व्य तो

इतन हृदयद्रावक और प्रभावादाक ह कि सम्पूर्ण रोति साहित्य में इनका अपना ही महत्व माना जाता है। प्रेम की बोणा को निरंतर बजाने वाले इस अमर कवि गायक को काव्य महत्ता के सदम में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। ये प्रमोदित कवि थे और अपनी तरफ के अनुसार रचना करते थे। इसी से इनकी रचनाओं में हृदय तत्त्व की प्रधानता है। प्रेम की पीर या इश्क का दद इनके एक एक वाक्य में पाया जाता है। शब्द बाहुल्य, अनुप्रामादि की प्रवृत्ति इनमें विशेष रूप से कहीं नहीं पायी जाती। शृंगार की ऐसी उमादमयी उक्तिया इनकी रचनाओं में मिलती है कि पढ़ने और सुनने वाल लोभ हा जात है। यह तमयना सच्ची उमग में ही सम्भव है। प्रेम की तमयता की दृष्टि से आलम की गणना रसधान और घनानन्द की काटि में होनी चाहिए।

दिल्ली में ही रोति मुक्त वाक्यधारा का सजन हुआ। इस प्रेम में भक्त-प्रवर रसखान और घनानन्द के नाम उल्लेखनीय हैं। इन्होंने राजा और नवाबा को प्रसन्न करने को परिपाटी छाड़कर स्वात सुखाय के लिए रचना की थी। आलम भी इसी धारा के कवि हैं।

आलम रचित ग्रन्थों का लेकर भी विद्वानों में मतभेद पाया जाता है। कुछ विद्वानों के अनुसार इनके तीन ग्रन्थ माने जाते हैं। आलम कलि, माधवानल, काम कदला और श्याम सनही। कुछ विद्वानों केवल आलम कलि ही उनकी कृति मानते हैं। आलम कलि वह ग्रन्थ है, जिसमें रूप की निन्दन धारा फूट पड़ती है और रसिक लोग इस साहित्य मुरा का पान कर घमर के समान झूमते फेरते हैं -

(1)

राग ज जबतो ताल बहरवा
जमुदा के अजिर विराज, मनमोहन जू ।
अग रज लागे छवि छाज सुरपाल की ॥
छोटे छोटे आछे पग घुघुरू घूमते घने ।
जाते चित हित लाग शीमा बाल जाल की ॥
आछी बतिया मुनाय धिन धाड़ियो न भाय ।
छातोतो छपाव लाग छोह वा दयाल की ॥
हेरि ब्रज नारी हारी बारि फरि डारी सय ।
आलम बलया लौज ऐसे नदलाल की ॥

(2)

राग केदारा तात् कहरवा

मुकता मनि पीत हरी बनमाल सु ।
 सो सुर चापु प्रकास किये जनु ॥
 भूषन दामिनि दोपति ह ।
 धुरवा सित चन्दन छोर बिये तनु ॥
 आलम धार सुधा मुरली ।
 बरसा पपिहा अजनारिन को पनु ॥
 आवत ह बन से घन से ललि ।
 री सजनी घनस्याम सदा घनु ॥

दाता गंजबख्श

अच्छे और बुरे, गहस्थाश्रमी और सत विचारधारा क लाग हर जाति जीर धम म पाय जात ह। इसम सदह नही कि प्रत्येन धम का फलाव उमका प्रचार और प्रसार उन मदाचारी और सयमी पुरुषा क द्वारा हो हुआ है जा उस धम के प्रवतक काल म हुए। ऐसी ही जीवन गाथा है एक मुसलमान सूफी महात्मा दाता गंजबख्श की। उनके उपदेश साधना क लिए जिनामुआ क लिए और मुमुक्षुआ के लिए अनमाल रत्न ह। इन विचारा पर जमल करक कोर्ट भी परमाव-पथिक उस मजिल तक पहुच सकता है, जहा स आगे कुछ नही है वही सारे साधना का सार है।

सूफी का अर्थ है—सफाईवाला। जिसने अपन हृदयरूपी पात को गदगी और विकारा से शुद्ध कर लिया पात को स्वच्छ किया, मन के मूल को धो डाला, वही सूफी कहलान का हकदार है। इस्लाम धम म प्राचीन काल से दो बग चले जा रहे हैं—एक विद्वान मौलवी व मुल्ताआ का और दूसरा सूफिया का। सही रूप म देया जाय ता मौलवी व मुल्ता लकीर के फकीर है। व धम की मिथ्या रुढ़िया म भी दयाल नहा दना चाहते। परतु सूफिया की बात अलग है। वे इस्लाम धम म रहत हुए मौलवी मुल्लाआ की तरह लकीर के फकीर नही। वे धम की उन बात स आगे बढ जात हैं, जो उनक अनुभव व गान की कसौटी पर ठीक नही उतरती। इही कारणो से सूफिया और मुल्लाआ में मदव बग भाव रहता आया है। समयानुकूल बादशाही दरबारो म थाडी पढ़च हाने ही इन मुल्लाआ ने उच्चकोटि क सूफी महात्माआ को अनेक कष्ट दिये हैं। इतिहास म ऐसे अनेक उदाहरण देखन को मिलत है।

सूफीमत को एक प्रकार स सतमत ही समझना चाहिय, क्योंकि दोना क सिद्धात लगभग मिलत जुलत है, केवल शता या भाषा का भेद है। सूफीमत की बुनियात महात्मा जव्वकर न डाली थी जा मुहम्मद साहब की गद्दी पर प्रथम खलोफा बन। जागे चलकर तो हरक धम पथ तथा सम्प्रदाय म विगाड या खराबी पदा होती है, इसम काइ सदह नही। वतमान युग म हिंदू साधुआ की तरह मुसलमान सूफी भी बहुत तीचे गिर चुक है।

उनमें लिखावा व ढाग रह गया है, भीतर की बगार्ड किसी व पाम नहा है। तला बनाकर व पैसा बमान का एक धधा इन लोग ने अपना लिया है। भेष बना लेत हैं, बातें करना सोख लेत हैं और इर्ती के तार लाग का धाजा देने हैं। ऐसे पाखण्डी मूफी फकीर दाता माहव के जमान म भी थे। उन्हान अपनी पुस्तका मे इनको बाफी बुरा भला कहा है।

दाता माहव का असला नाम अली हिजावरो था। इन्की ज मभूमि गजनी शहर था। माता पिता न इनका पहला विवाह ग्यागह वय की आयु म कर दिया था। पहलो पनी कुछ वय बाद ही मर गई। उसो मान बूमरा विवाह हुआ। उम समय इनकी आयु बीस वय की थी। दूसरो स्त्री भी मर गई। माता पिता और भाई भी मर गय। फिर इहान शादी तही को। बाख्यावस्वा से ही इनका मन बैगव्य म रम गया था। ये गजनी व प्रसिद्ध महात्मा अबूबुल फजल खतली की शरण म गय। उनम लोभा लो। चारह साल तन उनकी सेवा म रहकर अध्यात्म की मारी मजिले पार की। गुरु न इहें योग्य बनाकर देशाटन की आजा दी। इम काल म इहाने कई पश्चिमी देशा का भ्रमण किया। ऊचे से ऊचे महात्माओं का मत्संग किया। फिर गुरुद्वय के आश्रम मे लौट जाय। तन मन से गुरु की सेवा करन लगें। एव दिन मायकाल गुरुजी भोजन स निवृत्त होकर हाथ मुह धा रहे थे। दाता माहव जल द रहे थे। गुरुजी न इहें कहा — अली ! तू लाहीर जा और वहा अध्यात्म का प्रचार कर।

दाता माहव न कहा—गुरुजी, वहा ता मर बडे भाट हुसन जजानी हैं, वह बहुत काम कर रहे हैं। वह बहुत ऊचे और मुझस योग्य हैं फिर वहा मेरे जान की क्या जरूरत है ?

गुरु न कहा—तुम्हें और बाता से क्या लेना है। हमन जो हुक्म दिया है, उस पर अमल करा।

दाता माहव चुपचाप लाहीर रवाना हा गय। खबर की घाटी पार करके टड दो महीन म लाहीर पहुँचे। मायकाल का समय था। गाव के बाहर एव टूटी मस्जिद म ठहरे। रात काटी और प्रात काल शहर की ओर चल पडे। मामन से एक अर्थी आ रही थी। हजारा आदमी जर्षी के साथ थे। उसमे हिंदू थे, मुसलमान थे। तानो धर्मों के लोग साथ चल रहे थे। आगे बढ़कर

पूछा—यह अर्थी किसकी है। कौन अल्ला का प्यारा इस दुनिया का छोडकर जा रहा है, जिसको विदा करन इतन लोग जा रहे हैं।

किसी ने कहा—यह हुसैन जजानी का जनाजा है, जा लाहौर के एव ऊंचे दर्जे के फकीर थे। गुरु जाना का रहस्य, उन्हें अब गमना म आया। मन-ही मन गुरुदेव से क्षमा मागी। जब लोग उन्हें नन्न म दफनाकर लौटे तो आप भी इनका साथ लौट आये और उम स्थान पर जाकर ठहर गये। इस घटना से यह पता चलता है कि इनके गुरु कितन पहुँचे हुए थे जो दो महीन आगे ही घटना लाहौर से दूर गजनी रहते हुए जान गये थे। यह समय इतिहास की 1039 ईसवी के जामपाम का था। महमूद गजनवी के छ हमने भाग पर हा चुके थे और वह मातर्व हमले की तैयारी म था।

दाता माहव न लाहौर म पहुँचकर पहन छोटी मजिज बनवाई। उममम मदरना खोत दिया और स्वय नडका का पढ़ान मने। तो पाग माग पढ़ाने का काम करन क बात पढ़ाना छोड दिया। ताणा न पूछा—पढ़ान का काम क्या छोड दिया? आपन उत्तर दिया—इस काम म मर जिमाग म हुसैन का अजान पैदा हो रहा था। इसी कारण मैं प्रथम बैठ गया। फकीर का काम नहीं करना चाहिये, जिमम उनम अहकार पैदा ना जाय, क्योंकि अहकार जान ही ईश्वर मनुष्य म दूर हो जाना है।

कर और सेवा लेन से अपन ब) बचा। फिमी ता दिन न दुखा यह महाा पाप है। सबका काम तर पर किसी को अपना मय न जान। धन स्त्री और गतान को नरक की निशानी ममश गहम्य को खिदमत करती चाहिय, मगर उन्हें अपना दिल नहीं देना चाहिय। फकीरी की दौलत और अपना पात जमीरा और अनधिकारी को नहीं लुटाना चाहिय उग बहुत मम्हाल कर रखना चाहिये और जो सच्चा जिगामु हो उसे ही दना चाहिय। यह थोड़ी सी बात है इस पर अमल कर, ईश्वर अपने दिल म तुम जग देगा तेरा कपाण करेगा।”

दाता साहब ने कुछ धारह पुस्तकें लिखी हैं जिनम से आजकल केवल दो उपलब्ध हैं। एब का नाम 'कशफुन इमरार' और दूसरी का नाम 'कशफुन महजूब' है। इमरार ग न का अर्थ भेद व रहस्य होना है। 'कशफ' खुान को कहते हैं। पहली पुस्तक बहुत ही छोटी है परन्तु इसम मागर की गागर म भरा है। अध्यात्म के सारे भेद सक्त म बताया गया है। दूसरी 'कशफुल महजूब' बहुत बडा गया है, जिसम कोई बात छूटी नहीं है। अध्यात्म के हरेक सिद्धांत पर खूब लिखा गया है। सूफियाम यह पुस्तक प्रामाणिक मानी जाती है। हिजाब पर्दे को कहते हैं। कशफुन महजूब का अर्थ है—पर्दा खोल देना। दोनों पुस्तकें फारसी भाषा में हैं। अब इनकी भाषा इतने पुरान समय की है, जो न तो ठीक से पढ़ी जाती है और न ज दी ममथ में आती है।

दाता साहब न समय समय पर जो उपदेश अपने शिष्या को दिए हैं वे सभी माधको के लिए अनमोल रत्न हैं। इनम से कुछ इस प्रकार हैं -

- (1) अमीरा की सोहबत से अपने का बचाओ क्योंकि अमीरी और फकीरी में बैर है। नेक दिल अमीर की प्रशंसा करने में कोई बुराई नहीं है। पर इस प्रशंस के साथ अपनी कोई गरज नहीं होनी चाहिए। फकीरी म लालच जीर तण्णा का होना बहुत हानिकारक होता है।
- (2) मुरीद (शिष्य) के लिए पीर (गुरु) ही सब कुछ है। जो दित और जान से उसकी सेवा नहीं करता, उसके हाथ कुछ नहीं जाता।
- (3) ऐ मुरीदो ! कठिनाइया और मेहनत से मत घबराओ हिम्मत से काम लो, वीर बनो और अपना पूरा समय मालिक की याद में लगा दो।
- (4) विद्या प्राप्त करा मगर पढन तज ही न रहो उम पर अमन भी करो। बिना जमल के विद्या बेकार है।

- (5) मा-बाप की खूब खिदमत करो, उनका आशीर्वाद प्राप्त करो। जा मा-बाप की खिदमत नहीं करना, उस पर ईश्वरीय दया नहीं होती, उस तक मिलना है।
- (6) ऐ मुरीदो! यह दुनिया एक समुद्र है जिसमें जल के तरंग उठ रहे हैं, जोब इसने जल की सतह पर तैर रहे हैं। तुम्हें होशियार रहना चाहिये। इसमें डूब न मरो। गाथा लगाना बुरा नहीं, पर होश धो देना बुरा है।
- (7) भेषधारी और बूढ़े साधु-जा की सगन से अपन का बचाव रखो, क्योंकि उनसे हानि ही होती है।
- (8) विद्वाना की इज्जत करो पर जो विद्वान रुपये के तालच से अमीरा की सोहबत और प्रशंसा में पड़ गये हैं उनसे दूर रहो वह खुद गिर रहे हैं और तुम्हें भी गिरावेंगे।
- (9) ऐ मुरीदो! खुश जिन हाल में रखे उसी में राजी रहो जगल रहने के लिए दे तो जगल में खुशी से रहो, बस्ती में जगह दे तो पहा रहो। घोटो चढ़न का दे तो घोटो पर चढ़ो और गदहा दे तो गदहे पर चढ़ो। अच्छा भानन वह भोज तो अच्छा खाओ और सूखे टकड़े दे तो, उन्हें प्रसन्नता से खाओ। यदि कुछ न दे तो मन्ताप करो और प्रसन्न रहो, यही फकीरी है।
- (10) ऐ मुरीदो! त्याग और परोपकार ही फकीरी की कुजी है। नूरा को सुख पहचान के लिए कष्ट उठाना और दूसरा के लाभ के लिए अपन नुकसान की ओर ध्यान न जाना चाहिये, स्वाध की त्याग देना ही धम है।
- (11) किमी न पृछा—गम और भेंट में क्या भेद है और वह फकीर का तेना चाहिये या नहीं? जहाने उत्तर में कहा कि दान वह हाना है, जो अपन या अपन परिवार पर नार्ड विपत्ति जाती है, तो उसे दूर करने के लिए ईश्वर के नाम पर सक्लप किया जाता है। दान गरीब और मोहनाजो को देना चाहिये यह हक उनका ही है। भेंट ऊच दर्जे के महापुरुष मश से देने आये हैं उन्हें अपने स्वयं में लान रहे हैं, पर भेंट के लिए भी यदि अपन दिन में इन्ज हो रही हो, तो उस नहीं देना चाहिये। अबात ईश्वर की प्रेरणा से कोट सामने पना करता, उसका

बाबा फरीद

इनका जन्म सोचलिन गाहवाँने अनुमान श्रीपालपुर के निरटवर्ती किमी रोटी-पाल (घोतुवाल) गाँव में हुआ था। सरहिन्द में इनकी समाधि है। गुरु नानक ने अपनी पूँव की यात्रा में सौंठते समय इनके भेंट की थी। वह पाप-पतन में रहते थे। फरीदीन मगऊद बाबा फरीद आज से लगभग आठ सौ साल पहले पैदा हुए थे। इत्या जीयानाल 1200 ई० से 1280 ई० माना जाता है। वह महमूद गजनवी के निकट सर्वाधिकारी में स थे। गजनी पर जब तैमूर का बन्ना हुआ गया तो फरीद के दादा गजनी छोटपूर भारत में आ बने थे।

शेख फरीद पापपतन गद्दी के संस्थापक थे। बाबा फरीद अपना युग के प्रसिद्ध सूफी विद्वान खाना मुतबुद्दीन बन्तियार शाह बानी महरीसी (दिल्ली) के शिष्य थे। दिल्ली के प्रसिद्ध सूफी गत निजामुद्दीन औलिया फरीदजी के शिष्य थे। फरीदजी की मा धार्मिक विचारों की थी। यह बालक फरीद को सच्चे मन से ईश्वर की प्रायना करने की प्रेरणा देती थी। वह प्रतिदिन विद्या के नीचे शकनर छिपाकर रखती थी। प्रायना के बाद शकनर निकालकर देती थी। एक दिन मा घर में नहीं थी। फरीद ने इवांत (प्रायना) की, तो सचमुच ही शकनर निकली। उस दिन मा ने शकनर नहीं रखी थी। मा ने जब देखा तो उसे विश्वास हुआ गया कि बालक सच्चे मन से प्रायना करता है। इस दिन से फरीद का नाम शररगज पड गया, जिमना अर्थ है प्रबकर की धान।

सूफी सत बठार तपस्या में विश्वास रखते थे। ये एक बार कुए में लटके रहे और उहोने पानी की बूद तथा नहीं। अपनी शक्ति और तपस्या के बारे में वे कहते हैं -

फरीदा तनु सुक्का पिजर भिया, तालिया लूह ही काग।

अजं सुख न थोडियां, वेश बदे वे भाग ॥

मेरा शरीर सूख गया है। केवल ककाल रह गया है। बीबे मुझे मरा मानकर मेरा मास चोब चोचकर खा रहे हैं। अब भी देश्वर को मुझ पर दया नहीं आ रही है उसका गीतार मुझे नहीं हुआ। मैं वैसा अभाग हूँ।

सुनान में ऊब-नोब, हिंस्र-मुसुनाना चौर फन्द ततमजातर का जोर था ।
फरीदजी कहते हैं -

फरीदा सातरु लल्क माहि, लल्क बसे रब माहि ।

मदा कितनी लाखिए जां, तित्त बिन कोई नाहि ॥

ईश्वर कण-कण म बसा है । सारा ससार उसी का पश है । एतुं कोई बडा नही, कोई छोटा नहीं । ऐसा कोई नहीं, जितमे खुदा का पश नहीं हो ।

फरीद उस ईश्वर में कितने तल्लीन है । उन्हे अपने शरीर की भी कोई परवाह नहीं । वह कहते हैं -

कागा करग डडौलिया, सगल खाया भांत ।

ए दुई नयना मत छुअऊ, पिर "दिवक्षण दो आस ॥

हे कौवे तुने नोच-नोच कर मारा मास खा लिया है । मुझे इसकी कोई परवाह नहीं । मेरी एक प्रार्थना है, मेरी ये दो आंखें रहने दो, इन्हें छोड़ दो, इन्होंने मेरे अपने पीर के दश न करवा । एक ओर दोहा ऐसा ही है -

कागा सब तन खाइयो, मेरा चुन, चुन खाइयो भांत ।

दो नना मत खाइयो, मोहि पिदा मित्तन को आस ॥

कहा जाता है कि वह वर्षों कुछ भी सटने रहे और बाद में 12 साल तक पेट में खिली बाधकर अनेक धूमते रहे । उनकी मात उतुं पहा था पिथी से भी या के लिए नहीं मागना, जब तक खाना खुद न आये, भूये रहता ।

मनुष्य जीवन कितना निस्सार है । फरीदजी ने जीवा की एक गटा इस प्रकार है । एक दिन वह जाहीर में एक गागिया के मगान में पास पड़े थे । उन्होंने संगीत की मधुर ध्वनि सुनी । वह सीधे मगान में चले गये । गागिया ने, पहा, "खुदा का शुक्र ! जिसने मुझ जैसे पापी के घर पुण्यात्मा को भेजा है ।" फरीद ने यह सिद्ध कर दिया कि सभी उन् परमात्मा के बंदे हैं । ईश्वर ने जिसे सब सामग्री । बहुत दिना यान एक दिन फिर उसी मगान के पास स मत गुजर रहे थे, जहा उन्होंने बेश्या का उद्घाटन किया था । अब, बेश्या का जीवा मगान मगा था । उन्होंने देखा वहा स एक जनाजा निक्का है, वही गागिया मरी थी । फरीद भी इस यात्रा में शामिल हो गये और कहा -

फरीदा जिन लोट्टप जग मोह्या से सोदत में छिट ॥

कफजल रेत न सहदिया से, पली गुई बहिठ ॥

फरीद न गायिवा की यत्र पर बैठकर कहा, "दया सोमा ! मानव जीवन कितना निस्मार है । जिस मृग जैसी आर्षों पर जमाना माहित था और जो गुनु माग आर्षों का जल का भार भी न सह पाती थी, आज उसी पर बैठकर पशु अटे मेरे हैं ।"

आज ससार में स्वाय और सुत्र की होठ लगी है । दूररा का मुख देखकर अपना मन मन ललचाओ । आयश्यवताए सोमित रग्यो । सभी हम सच्चा मुख मिलेगा । फरीद जी कहने ह -

दखती मुखरी खायके ठडा पानी पिय ।

फरीदा देखि पराई चोपडो न तरसाये जीय ॥

इस तरह मन्था सत यही, जो निरतर परमात्मा म लीन रहता है ।

आयु सवारहि म मिलि मिलहि, म मिलिआ सुखु होइ ।

फरीदा जे तू मेरा होइ रहहि, समु जगु तेरा होइ ॥

फरीदा काले मडे कापडे, काला मंडा येसु ।

गुनही भरिया म फिरा, लोकु बहु दरवेसु ॥

फरीद पजाबी के पहले के मुफी शयि हैं । हिन्दी के प्रारम्भिक रूप के दर्शन भी उनकी वाणी म मिलते है । उनकी वाणी मधुर है, उमम ईश्वरीय प्रेम का रस है । यह मानवीय भावना म सुरभिाह । उनकी शयिता भी दरवशी की शयिता है । वह एक निष्ठावान साधक थे । बचीर, दादू आदि सत उनसे प्रभावित थे । फरीदजी की वाणी शयसाहब में सग्रहीत है ।

फरीदजी की साधना पद्धति म सूफीमत, इस्ताम और भारतीय अध्यात्म का सहज सुन्दर संगम है । उनकी प्रेम साधना म विलक्षण शांति कोमलता एक स्निग्धता थी । उनकी प्रेम साधना भारतीय परम्परा के अनुरूप तिनूत्तिमूतर थी । स्वयं को पत्नी तथा प्रभू को पति रूप में स्वीकार करने उहाने भारतीय पद्धति का अनुसरण किया । फरीदजी से एक विशेषता यह है कि विदेशी मुसलमान होते हुए भी उन्होंने भारतीय परिवेश को आत्मनात किया । फरीदजी भारतीय भक्ति भावना से अधिक प्रभावित हैं । परवर्ती निर्गुण भक्तिधारा के विकास म उन्होंने महत्वपूर्ण योगदान किया है ।

यद्यपि फरीदजी न 'नमाज' आदि से एक शरई मुसलमान की तरह निष्ठा प्रकट की है, परन्तु मूलतः वह प्रेममार्गी है। उनकी प्रणय अभिव्यजना में पूगनिष्ठा, दृढता, रविव्रता एवं स्वच्छता है। उनमें प्रियतम के दर्शन की तीव्र उत्कंठा है, उसे मिलने के लिए सभी कष्ट सहने की क्षमता है और न मिल पान के कारण बिरह व्याकुलता एवं वैचैनी है तडप और टीस है। अथ सूफियो की भाँति इनमें उद्विग्नता, उग्रता, उमाद अथवा प्रचंडता नहीं है।

शरीर और सत्कार की असारता, मिथ्यत्व तथा धनवैभव, ऐश्वर्य, यौवन, सुन्दरता, मान, प्रतिष्ठा आदि अस्थिरता एवं क्षणभंगुरता आदि का विवरण फरीद जी ने दिया है। दोजख जोर मृत्यु का भय दिखाकर मनुष्य को वह बुरे कर्मों से बचने तथा शुभ श्रेष्ठ कर्म करने के लिए उत्साहित करते हैं। सत्य, सतोष, परापकार, धामा, धिनम्रता, अहिंसा आदि गुणों को ग्रहण करके ईश्वरीय प्रेम में लवलीन होने की प्रेरणा वह देते हैं।

बूढा होजा शेख फरीदु, कपणि लगी बेह ।

जे सकु बरिआ जीवणा, भी तनु होसी बेह ॥

बुल्लशाह

भारत स्वतंत्र होने के पहले लाहौर पंजाब प्रांत में था। यह पंजाब का बहुत बड़ा शहर माना जाता था। विभाजन होने का यही पंजाब की राजधानी रहा। लाहौर से पूर्व मतीन मील दूरी पर एक मियामीर नामक वेदाती फकीर रहता था। यह सूफीमत का था। इस जगह को मियामीर के बाद मियामीर की छावनी कहा जाता था।

मियामीर के शिष्य का नाम था बुल्लेशाह। वह पहले बलद शहर के बादशाह थे जो बुखारा में कुछ दूर है, पर जब प्रारब्ज-योग आ जाता है, तो जीवन में परिवर्तन होने में देर नहीं लगता। यह बात फरीबन साके तीन सौ वर्ष पूर्व की है। एक बार सांसारिक सुखों से मन ऊबा कि फिर वृत्ति परमाथ पर हो जानी है। तब साधक सब कुछ छोड़कर परमाथ में पर्यटक बन जाता है। फिर तो गुरु कृपा से वह पूण रूपेण अधिकारी बन जाता है। यही बात बुल्लेशाह की हुई।

एक दिन बुल्लेशाह के मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ। जीवन की साम्राज्य मुख देनेवाली बातों से बुल्लेशाह का मन उठ गया। उसका मन में विषय सुखों के प्रति रवाना उत्पन्न हो गई। वह मन ही मन सोचता रहा। किसी बात की उकठा जब जाती है तो फिर मनुष्य चुपचाप नहीं बैठता। एक दिन बादशाह बुल्लेशाह ने अपने बजौरा से पूछा कि क्या कोई ऊचा पहुचा हुआ महात्मा है। जहां तक हो सके, वह सूफीमत का हो। बजौरा ने उसी समय मियामीर का नाम पेश किया। मियामीर सूफीमत के फकीर थे। इनका नाम दूर दूर तक फैला हुआ था। दूर देशों के लोग भी इन्हें जानते थे। वह उस समय के ध्याति प्राप्ति महात्मा थे। शीघ्र ही एक दिन बुल्लेशाह ने बादशाही छोड़ दी और सदा के लिए फकीरी ग्रहण कर ली। अपने पाह्लादे को गद्दी पर बिठाकर राजकाज से सदा के लिए मुक्त हो गये।

बुल्लेशाह के मन में इच्छा थी कि मैं मियामीर से मिलूँ। अपने भावी गुरुदेव से मिलने की मन में तड़प थी। वह सौ पचास आदमों, बजौरा तथा कुछ खजाना साथ लेकर लाहौर की तरफ निकल पड़े। दो महीने में लाहौर पहुँचे। मियामीर जगल की एक टुट्टी में रहते थे और बहुत से फकीर बाहर रहते थे। जब कोई दशनार्थी आता, तब अदर सूचित कर दिया जाता। अदर से मियामीर साहब की इशारात हो जानी, ता दशनार्थी अदर जा सकता था।

बुल्लेशाह जगल में मियामीर की कुटी के पास पहुँचे । बादशाह बुल्लेशाह ने भी फकीरों के द्वारा मियामीर से मिलने की सूचना भेज दी । मियामीर में फकीरो से पूछा कि वह किन हालत में है ? फकीरो ने कहा—'पौ पचास आदमी उनके साथ हैं । बहुत-सा सामान है । सवारों के लिए घोड़े आदि हैं । साथ में वजीर हैं । बादशाही ठाट से वह आपके दशन क लिए आये हैं ।

मियामीर साहब न कहा—'उहें जाकर कहो, अभी तुम्हें दशन नहीं होगा । फकीरो की बात सुनकर बुल्लेशाह बादशाह वहाँ से दूर चले गए । वजीर को पास बुलाकर कहा—'आप आदमियों के साथ सामान लेकर वापस घर जाइए । मैं नहीं आऊंगा । वजीर ने कहा—'मैं वहाँ जाकर शाहजादे को क्या जवाब दूंगा ? यह मेरे लिए असम्भव है कि मैं आपको यहीं छोड़कर वापस घर जाऊँ ?

बुल्लेशाह ने कहा—'वजीर, मैं तो वापस जान के लिए यहाँ पर आया नहीं हूँ । मैं तो खुदा के, ईश्वर के साथ मिलने के लिए यहाँ पर आया हूँ । टीक है, आप मेरा कहना नहीं मानते हों तो मैं अपनी मर्जी से सारा सामान लुटवा देता हूँ । वजीर ने बादशाह से हाथ जोड़कर कहा—'जहाँपनाह की जो भी मर्जी हो ! बादशाह ने सारा सामान अपने नौकरों में लुटवा दिया और कह दिया कि अपने-अपने घर चले जाएँ ! तबरीवन सभी नौकर चले गए । वजीर बेचारा साचार हो गया । बादशाह का वैराग कोई साधारण नहीं था । वह प्रभु से मिलने की लगन में इतना मस्त हो गया था कि धीरे धीरे अपने शरीर की सुघबुध भी खो रहा था । बादशाह न केवल एक चादर अपने लिए रख ली थी । बाकी सारा माल दान कर दिया ।

अब बुल्लेशाह बादशाह मियामीर के पास आया । फिर फकीरो से मिलने के लिए सूचना भिजवाई । मियामीर साहब न फकीरो से फिर पूछा—'अब वह किस हालत में है ? फकीरो ने कहा—'उहोंने सब कुछ लुटा लिया । केवल एक चादर अपने ऊपर ओढ़ी है । मियामीर साहब ने सर्वेश भेजा—'अभी तुम्हें दीदार नहीं होगा । अगर आप दीदार के लिए उत्सुक है, तो यहाँ से बारह कोस पर रावी नदी के किनारे जगल में एक फकीर रहता है । उसके पास जाकर बारह साल तक तपस्या करो । फिर मेरे पास आना, तुम्हें दीदार होगा ।

बुल्लेशाह को केवल आज्ञा की देर थी । उसी वकत वह चल पडे । रावी के किनारे जगल में गया । फकीर के पास पहुँचन पर इस फकीर न बुल्लेशाह से प्रश्न किया, क्या आप बलद के बादशाह हो ? बुल्लेशाह न कहा, महाराज ! आपन मुझे कैसे

पहचाना ? फकीर न कहा—एक दिन मियामीर साहब मिन थे, उन्होन मुझे कहा था कि इस दिन बजद के बादशाह तुम्हारे पास आएंगे, ता तुम उनको अम्ब्यास की जुगति बतलाना, जिसस उनका दिल साफ हो जाए । वह दिन आज ही है । वह कभी झूठ नहीं बोलते, मेरा पूरा विश्वास है । मेरे खयाल स जाय ही बजद के बादशाह हैं ।

बुल्लेशाह न हाथ जोडकर कहा—हुजूर मैं ही हू । इस शरीर को ही बजद का बादशाह कहते है । मुझे ही मियामीर साहब न आपके पास भजा है । उस फकीर न बुल्लेशाह को योग की युक्ति बतला दी । बुल्लेशाह जगल के कदमून खाकर योगाभ्यास करने लगे । जब बारह बय का एक तप पूरा हो गया ता बुल्लेशाह का शरीर सूख गया । शरीर तथा चेहरा का रंग बदल गया । अब फकीर न कहा, बुल्लेशाह तुम अब मियामीर साहब से मिलो । अब तुम्हें दीवार हागा ।

बुल्लेशाह फकीर की आज्ञा सें मियामीर साहब की कुटिया पर पहुंचे । पहुंचने की तरह फकीरों द्वांग सूचना भेज दी । मियामीर साहब ने उनका हाल पूछा । फकीरों ने कहा—उनका चेहरा सूख गया ह रंग बदल गया ह । उनके सिर क बाल बड गए ह । नाखून बड गए ह । शरीर पर मिट्टी लगी हुई है । जब वह पहचाने में भी नहीं जाते । यह हाल सुनकर उन्हें अदर बुलाया । भीतर पहुंचते ही बुल्लेशाह ने मियामीर साहब का उडबत प्रणाम किया । आज कई साना बाद गुरु शिष्य का मिलन हुआ था । जमी तक गुरु (मियामीर साहब) से गुरुपदेश नहीं प्राप्त हुआ था । आज का वह महान दिन था । मियामीर साहब ने बठन की आज्ञा दी । बुल्लेशाह गुरुजी के सानिध्य म बँठ गये । गुरुदेव न उनका अद्वत आत्मा का उपवेश दिया । उस दिन से बादशाह का नाम बुल्लेशाह रख दिया गया । बुल्लेशाह अपन को कृतकृत्य मानने लगे । उनको तपस्या सफल हो गई । अब बुल्लेशाह गुरुजी के सानिध्य में रहने लगे । गुरु नेवा इनका जीवन का काय रखा । वह महान तपस्वी थे । वेदान्ती थे । इनकी रचना मे केवल वेदांत का ही ध्यान पाया जाता है । पंजाब में आज भी घर घर में लाग इनकी कविता गात ह ।

इनके जीवन का एक प्रसंग बहुत ही सुंदर ह । एक दिन बुल्लेशाह बाजार में गए थे । एक मुमनमाव न उन्हें मजाक में पूछा—बुल्लेशाह, तूम कौन हो ? बुल्लेशाह ने साफ शब्दा में कहा—म खुदा हू । फिर क्या

देखना था। शरारती मुसलमाना ने इन्हें पकड़कर बादशाह के सामने पेश किया और बादशाह से शिकायत की कि यह फकीर कुफ़र करता है और कहता है—मैं खुदा हूँ। बादशाह ने बुल्लेशाह से पूछा—बुल्लेशाह, तू कौन है? बुल्लेशाह ने कहा—मैं बदा हूँ। बादशाह ने मुसलमाना से कहा—यह तो बदा कहता है। इसे छोड़ दो! इस तरह पकड़ना तथा छोड़ना तीन चार बार हुआ। आखिर एक दिन बादशाह ने बुल्लेशाह से पूछा—क्या बुल्लेशाह, ये लोग ठीक कहते हैं कि तुम बाहर अपने को खुदा कहत हा और यहा आकर बदा कहते हो? यह कैसे हो जाता है?

बुल्लेशाह ने कहा—आप खुदा और बदे का अर्थ सुनिये। जो शरा की बंद में है, वह बदा कहलाता है और जो शरा की बंद में नहीं, वह खुदा है। जब मैं बाजार में शरा की बंद में रहित होकर घूमता हूँ, तब तो मेरे खुदा होने में कोई शक नहीं है और जब पकड़ा जाता हूँ, तब बदा बन जाता हूँ, क्योंकि खुदमुन्दारी उस वक़्त नहीं रहती। बादशाह ने उसे छोड़ दिया।

फिर एक दिन बाजार में बुल्लेशाह से पूछा—आप कौन हो? बुल्लेशाह ने सहज रूप में कहा, मैं बादशाह हूँ। फिर बुल्लेशाह को पकड़कर बादशाह के पास ले गये। बादशाह से कहा—यह फकीर पहले खुदाई का दावा करता था, अब बादशाही का दावा करता है। बादशाह ने कहा—बुल्लेशाह तुम कौन हो? बुल्लेशाह ने कहा—मैं बादशाह हूँ। बादशाह ने कहा—तुम्हारे पास खजाना कहा है? बुल्लेशाह ने कहा—जा बादशाह बहुत सा खच करता है, वह खजाना रखता है। हमारा खच कुछ नहीं तो हम खजाना क्यों रखें? फिर पूछा—बादशाह के पास फौज रहती है, तुम्हारे पास फौज कहा है? बुल्लेशाह ने कहा—फौज वह रखता है, जिसके दुश्मन होते हैं। हमारा तो कोई दुश्मन ही नहीं है, फिर हम फौज क्यों रखें? अब बताओ हमारे बादशाह होने में क्या शक है? उस दिन से बादशाह ने कहा कि आगे इसको कोई न पकड़े।

(1)

राग पौलू—ताल फहरदा

फद मिलसो म बिरहो सताई नू ।

आप न आवे, न लिवि भेजें, मटिट अजे ही लाई नू ॥

ते अंहा थोइ होर ना जाणा, म तनि सूल सवाई नू ।

रात दिने आराम न म नू, खार्वं बिरह कसाई नू ॥

बुल्लेशाह घृण जीवन मेरा, जीलिंग दरस दिलाई नू ।

(2)

राग मालवीत—ताल तिताला

टुक बूझ कवन छप आया ह ।
 कइ नुकने में जो फेर पड़ा, तब ऐन ऐन का नामधरा ॥
 जब मुरसिद नुकता दूर किया, तब ऐनी ऐन कहाया ह ।
 तुसीं इत्तम किताबी पढ़ दे हो, करे उलटे माने कर दे हो ॥
 बेमूजब एव लड्ड हो, केहा उलटा वेद पढ़ाया ह ।
 बुद्ध दूर करो कोई सीर नहीं, हिंदू-सुरक कोई होर नहीं ॥
 मव साधु लथो कोई चोर नहीं, घट घट में आप समाया ह ।
 ना में मुल्ता ना में काजी, ना म सुन्नी ना म हाजी ॥
 बुल्नेशाह नाल लाई बाजी, अनहद सबद ब्रताया ह ।

(3)

राग काफो—ताल तिताला

माटी लुदी करें बी यार ।
 माटी जोडा माटी घोडा, माटीदा अतवार ॥
 माटी माटी नू मारन लागी, माटी दे हथियार ।
 जित माटी पर बहतो माटी, तित माटी हकार ॥
 माटी बाग बगीचा माटी, माटी बी गुलजार ।
 माटी माटी नू देखन आई, ह माटी बी बहार ।
 हन जब फिर माटी होई, सोदी पांव पतार ।
 बुल्नेशाह ब्रजारत बूझी, लाह सिरों में मार ॥

(4)

राग भरौं—ताल दीपचवी

अब तो जाग मुसाफिर प्यारे ।
 रन घटी लटके सब तारे ॥ 1
 आवा गौन सराईं डेरे, ।
 साव तयार मुसाफिर तेरे ॥
 अज न सुनदा कूच नकारे ।
 कर ले आज कर नदी बला, ॥
 बहुरि न होसो आवन तेरा ।
 साथ तरा चल चल्ल पुकारे ॥
 आपो अपने लाहें दोडी, ।
 क्या सरधन क्या निरधन बीरी, ॥
 लाहा नाम तू लेहु समारे ।
 बृल्ले मुहुदी पैरी एरिये, ॥
 गफलत छोड हीला कुछ करिये ।
 मिरग जतन बिन खेत उजारे ॥

रज्जबजी

ईश्वर पद की प्राप्ति का, हेतु मनुज तन पाय ।

सद् शिक्षा गृह भजनकर, श्वास न थया गवाय ॥

संत दादूजी महाराज के शिष्य मडली म रज्जबजी का नाम बड़े ही आदर के साथ लिया जाता है । दादूजी महाराज की शिष्य शाखा बहुत बड़ी थी। रज्जबजी जानि स पठान थे। इनका पूर्व नाम रज्जब अली था। इनका जन्म सवत् 1624 के लगभग माना जाता है। इनका जन्मस्थान राजस्थान के जयपुर से पाच मील दूरी पर सागानेर ग्राम म हुआ था। सागानेर छपाई के काम म बडा ही मशहूर ग्राम है । रज्जबजी के पिता आमर नरेश राजा मानसिंह की फौज म छोटे सैनिक थे ।

रज्जबजी जब विवाह के योग्य हुए तो पिता ने उनका विवाह करने का निश्चय किया। नडकी देखी। मगनी हुई। विवाह आमेर म होनेवाला था। माना पिता तथा रिश्नेदार विवाह की खुशी मे थे। विवाह के एक दिन पहले बारात सागानेर से बड़ी धूमधाम के साथ चल पडी। बारातियोको दु है के साथ आमेर जाना था। उस समय जयपुर शहर बसा हुआ नहीं था। सत दादूजी महाराज का आमेर के पाम हो उन दिना मुकाम था। जब बागत आमेर के पास आ चुकी तो पता चला की दादू जी महाराज वही पर वही रहने हैं। रज्जबजी दुहे के भेय मे कुछ बारातियो की साथ लेकर दादूजी महाराज क निवास स्थान पर जा पहुच। सध्या का समय था, दादूजी महाराज ध्यान मे बठे थे। बारातियो ने जाकर सत के दर्शन किए। कुछ देर बठे। दादूजी महाराज की समाधि लगी हुई थी। समाधिस्य हाने के कारण वह किमी से न बात करते, न कुछ कहत। साथ के लोग बठे बठे ऊब गये। वहने लगे चलो सत का दर्शन हो गया। चरने के लिए खडे हो गये। तब रज्जबजी न कहा— भाई ! सत का दर्शन तो हुआ, परतु न तो उहान हमे देखा न हमने उनसे कुछ वचन-विलास किया। इतनी देर ठहरे तो और भी कुछ देर ठहरो ! महापुरुष का ध्यान ममाप्त हागा तो वह अपने आप ही बात करेंगे। रज्जबजी के बहान से सभी ठहर गए। ठहरना पडा ही दुहे के बिना बरात की शोभा भी क्या ? कुछ ही समय म दादूजी का ध्यान ममाप्त हुआ। उहोने रज्जबजी की देखा और सहजभाव स उनन मह से निकल पडा—

रज्जब तं गज्जब किया, शिरपर बाधा मोर ।

आया या हरि भजन को, फर नरक को ठौर ॥

वम फिर क्या था ? इतने पर ही रज्जबजी को बैराग हो गया और उनकी प्रवृत्ति बदल गयी। सांसारिक मोह समाप्त हुआ। जीवन में नया मोड़ आया। बारातिया ने रज्जबजी को चलने के लिए मजबूर किया। रज्जबजी ने अपना दूल्हे का सेहरा उतार दिया और अपने छोटे भाई के सामने रखकर कहा—भय्या ! मैं शादी नहीं करूँगा, आजीवन ब्रह्मचारी रहूँगा। आप जाओ बड़े प्रेम से विवाह करो। रज्जबजी का मन विवाह करने से हट जाने पर माता पिता तथा बागती लोग एकदम नाराज हो गये। बारातियो में घबराहट फैल गयी। जितने मनुष्य उतने विचार। कोई दादूजी को ही दोष देने लगा। कोई दादूजी की प्रशंसा करने लगा। सभी ने रज्जबजी को समझाया। रात ऐसी ही निकल गयी। दादूजी ने भी अपनी ओर से कह दिया कि रज्जबजी आप शादी करो, मुझ से गहस्थाश्रम का निर्वाह करो। रज्जबजी ने एक ही बात सभी को दृढ़तापूर्वक बताई। उन्होंने कहा, चाहे कुछ भी हो जाय, मैं इस जन्म में शादी नहीं करूँगा। आखिर उस कथा का विवाह रज्जबजी के छोटे भाई के साथ हुआ। रज्जबजी आजीवन ब्रह्मचारी ही रहे।

रामम्नेही सम्प्रदाय के जाद्व प्रवक्तव महात्मा शहापुर निवासी रामचरणदासजी ने अपने वाणी में ठीक ही कहा है -

दादू असा गुरु मिले शिष्य रज्जब सा जाण ।

एक शब्द में उद्धरा, रही न खेचा तान ॥

रज्जबजी केवल बीस साल की अवस्था में सन् 1644 में आमेर में दादूजी के शिष्य हुए। गुरुदेव के चरणों में अपना जीवन समर्पित करने पर वे निरंतर गुरु सेवा में ही लवलीन रहने लगे। गुरु सेवा, सतसग और ईश्वर भजन उनके जीवन के प्रधान अंग बन गये। गुरु सेवा के अतिरिक्त जहाँ भी कथा-कीर्तन होता, वहाँ पर रज्जबजी जाते। सतसग ध्यान से सुनते। सुने हुए विचार आत्मसात करते और वही वृमरे को समझाने का प्रयास करते। दादूजी की वाणी का सग्रह आज जो प्राप्त है, उसमें श्रद्धापूर्वक संगृहीत करने का शायद गुरु भक्त रज्जबजी ने ही किया था।

एक दिन एक पंडितजी की कथा चल रही थी। रज्जबजी कथा सुनने गये। पंडित विद्वान था। वह अपने विचार दृष्टांत के द्वारा समझाने का प्रयास करता था। उसकी दृष्टांत पद्धति बहुत ही सुंदर थी। कथा सुनकर रज्जबजी गदगद हो गये। मन में एक विचार आया। क्या मैं भी अपने विचार दृष्टांत द्वारा समझा सकूंगा? मन उदास हो गया। पहुँचे हुए सद्गुरु को सेवाभावी शिष्य की मनोनामना समझ लेने में देर नहीं लगी। रज्जबजी को उदास देखते ही दादूजी ने पूछा— रज्जबजी आज इतने उदास क्यों? बात क्या है?

रज्जबजी ने विनम्र भाव से कहा—गुरुदेव! मैं अभी-अभी पंडितजी की कथा सुनकर आया हूँ। पंडितजी की दृष्टांत शैली बहुत ही सुंदर थी। मेरे मन में विचार आया, क्या मैं भी अपने विचार दृष्टांत देकर रक्त कर सकूंगा?

दादूजी के मन में शिष्य के प्रति करुणा जागृत हुई। उन्होंने रज्जबजी को आशीर्वाद दिया—रज्जब तू चित्ता नार सुझे बहुत अच्छी दृष्टांत शैली प्राप्त होगी। गुरु का आशीर्वाद प्राप्त होत ही रज्जबजी दृष्टांत देना में बहुत ही निपुण हुए। इसी कारण उन्हें सबत्र ख्याति मिली।

एक दूरसा आढा नामक चारण था। उसके कवित्व पर बादशाह अकबर खुश थे। जहागीर ने तो इसे विजय पत्र दिया था। आढा का कहना था कि मेरे साथ जो शास्त्राय म हारेगा, उस मरो पालकी बोनी पड़ेगी और यदि मैं हार गया तो वे सारी चीजें उसे भेंट करेगा जो मुझे प्राप्त है। वह दिनविजय करता हुआ सागार में रज्जबजी के पाम आया। उसने प्रश्न के रूप में एक दोहा सुनाया—

दावन अक्षर सप्त स्वर, गल भाषा छत्तीस।

इतने ऊपर जो कथे, तो मानू कवि ईश ॥

रज्जबजी ने बड़े सुंदर शब्दा में मवात का जवाब दिया—

दावन अक्षर सप्त स्वर, गल भाषा छत्तीस।

इतने ऊपर हर मजन, अन अक्षर जगदीश ॥

रज्जबजी का उत्तर सुनकर दूरसा आढा निरुत्तर हो गया। उसने उसी दिन से रज्जबजी को अपना गुरु मान लिया। रज्जबजी के सतसंग से वह लाभ उठाता रहा। रज्जबजी अधिबतर दादूजी के पाम ही रहते थे। कभी-कभी सागानेर आया-जाया करते थे।

एक बार खाटू ग्राम में भरुटिये राव ने दादूजी को निमन्त्रण दिया। राव ने एक मन्त्री न उम्मे भडकाया मयो कि उसके मन में दादूजी के प्रति कोई आस्था नहीं थी। दादूजी महाराज अपने शिष्यों के साथ खाटू पधारे। राव ने उनके साथ प्रश्नात्तर किया। फिर भी अपने मन में विश्वास ना तायें। दादूजी के वापस लौटते समय एक मन्त्रवाला हाथी उनपर छोड़ दिया गया। साथ में रज्जवजी तथा गरीबदासजी थे। हाथी का रानने के लिए रज्जवजी आगे बढ़ने लगे। दादूजी महाराज ने रज्जवजी से कहा—रज्जव अपना राखनहारा तो एक ईश्वर ही है। रज्जवजी पीछे हट गये। हाथी ने दादूजी महाराज के चरणों पर सुड रखकर प्रणाम किया। दादूजी ने अपना हाथ हाथी के मस्तक पर रखा और हाथी शांत भाव से वापस लौट गया। राव लज्जित हुआ। उसकी दादूजी के प्रति श्रद्धा बढ़ गयी। उसने दादू से क्षमा मागी।

एक दिन दादूजी महाराज अपने शिष्यों के साथ वही जा रहे थे। रास्ते में पानी का नाला पड़ा। नाले में पानी थोड़ा था और कीचड़ ज्यादा थी। दादूजी महाराज ने अपने साधियों को पत्थर डालने के लिए कहा, जिससे पैर में कीचड़ न लगे। सब शिष्य पत्थर डूढ़न लगे। रज्जवजी कीचड़ में लेटकर बोले—गुरुदेव! इस दास के शरीर पर पाव रखकर जाइये। पत्थर की क्या आवश्यकता है? दादूजी महाराज रज्जवजी की गुरु भक्ति से अत्यंत प्रसन्न हुए।

दादूजी महाराज के ब्रह्मलीन होने पर रज्जवजी ने अपने नेत्र सदा के लिए बंद कर लिये थे। कई बार सता ने नत्र खोलने के लिए आग्रह किया तो रज्जवजी एक ही बात कहते—सता! अब इस समार में मेरे देखने योग्य कुछ रहा ही नहीं। केवल गुरुदेव का शरीर देखने योग्य था, वह भी नहीं रहा। अब देखने की ईच्छा ही मन में नहीं है।

दादू पाय में वान कवि सुन्दरदाम जी नामक एक सत हुए। इनका रज्जवजी से बड़ा ही प्रेम था। सुन्दरदामजी हमेशा रज्जवजी से मिलने के लिए सागानेर आते थे। ब्रह्मलीन होने से पहले दादूजी महाराज ने रज्जवजी से कहा था—रज्जव तुम इस बालक पर विशेष ध्यान रखना। यह होनहार है। रज्जवजी ने सुन्दरदामजी को काशी में अध्ययन के लिए भेजा। ममी सता का सुन्दरदासजी से प्रेम था।

रज्जवजी का देहांत सवत् 1746 में हुआ। रज्जवजी 122 वर्ष तक जीवित रहे। इतने दीर्घ जीवन में ब्रह्म चिंतन, सत्संग और साहित्य रचना करते रहे।

मानव जीवन की सफाता व बारे म दादूजी महागज न अपन साहित्य म कहा है :-

हरिभज साफल जीवना, परोपकार सभाय ।

दादू भरना तह गला, जहाँ पशु पक्षी लाय ॥

इसी प्रकार का जीवन रज्जवजी व्यतीत करत रहे। रज्जवजी की रचना साहित्य-संपदा का विपुल भण्डार है ।

रज्जव-वाणी

बिन सतगुरु समता नहीं आवे, नीच ऊँच निगुरा मुड्डाव ।

एक ही पवन एक ही पानी, बुद्धि बिन बीच बँरता ठानी ॥

एक आत्म एक सरोरा, समझ बिना बड अतर बीरा ।

सौंज सब विधि बक बनाई, दुविधा दुरमति ह रे भाई ॥

सबके नखतिर एक बिचारा, एके सबका तिरजनहारा ।

गुरु के ज्ञान माहि सबए के, रज्जव अध अज्ञान अनेक ॥

जय लग जीव जाण्या कह, तब लग कछु न जाण ।

जय रज्जव जाण्या सबे, जाणि भये अजाण ॥

आत्म जे कछु उच्चर, सब अपणा उनमान ।

रज्जव अज्जव अक्ल गति, सो किहू नाहि जान ॥

माया माह ब्रह्म पाइये, ब्रह्म मध्यत माया ।

फल सुमन की कामना, रज्जव भेद सु पाया ॥

पल पल अतर होतह, पगि पगि पडिये दुरि ।

बचन-बचन बीच पड, रज्जव कहाँ हजूरि ॥

रज्जव की अरदास यह, ओर कह कछु नाहि ।

भो भन लोअ हेरि हरि, मिले न माया माहि ॥

एनबुल्ला शाह साहब

टैमक साहब क शिवमंदिर के ठीक सामने ऊपर ग्वालियर किले को काटकर एक गुफा बनी हुई थी। यह बात काफी पुरानी है। यह गुफा एनबुल्ला शाह साहब का निवास स्थान था जिसके आस पास प्रकृति ने अपना सौंदर्य बिखेर रखा था। आप ब्रह्मनिष्ठ सत थे। इनके बारे में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं। इतना तो जरूर है कि यह सन् 1900 के आसपास विद्यमान थे। जीवन के 80 वर्ष की आयु में इन्होंने अपने नरवर शरीर को त्याग दिया।

शाह साहब माहित्य प्रेमी भी थे। इन्होंने बहुत सी कुडलिया लिखी हैं। इनका जीवन त्याग का प्रतीक था। केवल सामान्य जनता ही इनके प्रति श्रद्धा रखती थी। यहाँ तक कि राजा-महाराजाओं की भी इनके प्रति अगाध श्रद्धा थी। एक दिन ग्वालियर नरेश जयाजीराव सिधिया ने इनकी सेवा में एक सुंदर-सजाया हुआ घोड़ा तथा दुशाले भेजे। इस फर्रुड महात्मा ने उसे स्वीकार नहीं किया और जवाब में निम्न कुडलिया लिखकर उसने भेजी —

अब क्या चाहिये साधु को, सभी दिया भगवान ।
कपड़े खाक मस्तान के, कद मूल फल खान ॥

कद मल फल खान, नदी जल पीवत दीनी ।
खपर दोनो हाथ, गुफा रहने को दीनी ॥

विचरन को चारो दिशा, एन भोग को ज्ञान ।

कुडनिया पढ़न पर पता चलता है कि शाह साहब कितनी ऊँची साधना में लीन थे। एक ऊँचा चाटीदार टासा, लम्बा कुरता, पील रंग का नीचे कौपीन—यही इनका मादा रहन-सहन था परंतु इनमें मुखारविंद में निरलनेवाली वाणी हृदय का स्पग कर लती थी।

(1)

और हमारे कौन ह, जाते कहे हजूर ।
दोसत आपहि आप हों, रोम रोम भरपूर ॥
रोम रोम भरपूर, साबला साचा साई ।
मेरे मन की बात, छपी कछु तुमसे नाई ।
जो चाहे सोई करो, एन हम मजूर ।

(2)

जो नर पावे आपकी, तो तारावण आप ।
 आप बिना नर करत ह, आप आपनो जाप ॥
 आप आपनो जाप, आपको पायत नाहीं ।
 जो पावे नर आपकी, तो आप मुसाई ॥
 एक बिना गुरु ज्ञान के, तर भोगो त्रय ताप ।

(3)

हम नाही हम हं, तुमही हो करतार ।
 जब हम थे तब तुम नहीं, अब तुम हो मुस्तार ॥
 अब तुम ही मुस्तार, कि अब बस अपना नाहीं ।
 चाहे दुःख में राखो, और चाहे सुख माहीं ॥
 तुम हरि बन आपसे, 'एन' करत व्योहार ।

(4)

जब लगी ठठरी शीश पर, राम नाम ह सत ।
 मानस बैठ मजान में, पय जात अलबत्त ॥
 पर्यं ज्ञान अलबत्त, रटा र रहेगा कीई ।
 रहे राम का नाम, जगत में मही लस घोई ॥
 हाथ धोय पर चल दिये 'एन' ज्ञान भयो गत ।

(5)

एना नव फरीद ह, परमहंस निरवान ।
 दाढ़ी मूँछ भुजावते, भस्म करे अस्नात ॥
 भस्म करे अस्नान, ओढ़ पिताम्बर साड़ी ।
 माने एक ही मस्त, पुरख हिंदू से पारी ॥
 भिन्न बोकू चीन के, 'एन' हमारा नाम ।

(6)

तीन तरफ हें इरक के, एन काफ भव चीन ।
 एक बढ़ावत जकल की, शनि शरम ल चीन ॥
 शनि शरम ल चीन, काफ करार बढ़ावे ।
 वेस बरा हो जमो, तमो टुक दरा पावे ॥
 तो तो गुण तोतो हरफ, 'एन' लेत ह चीन ।

हमारे मुस्लिम सत कवि कहना ही था कि चित्र के कृष्ण भगवान ने मुह खोला और राधिकाजी ने पान का बीड़ा बड़े आदर के साथ प्रभु के मुह में रख दिया।

निर्जीव कागज में सजीवता का यह काय देख बादशाह चकित रह गए। बादशाह ने लतीफशाह के चरण पकड़ लिये। उस दिन से बादशाह लतीफशाह का शरण भक्त हो गया।

सिद्ध चैतन्य और रगनाथ स्वामी निगड़ीकर द्वारा रचित सन मालिका में लतीफशाह का गौरवपूर्ण उल्लेख है। महाकवि मोरोपत ने सप्तमि माला में लतीफशाह की मुक्क कठ से प्रशंसा की है। मोरोपत ने उसे 'साधु सभाप्राण वल्लभा' कहा है। सत तुकाराम और रगनाथ स्वामी की स्तुती का पात्र यह होनवाला सत मतरहवी शताब्दी के 'पूव हुआ है। लतीफशाह के एक पद में कबीर और मीराबाई का भी उल्लेख है। इन पद से यह निश्चयपूर्वक अनुमान लगाया जा सकता है कि कबीर मीराबाई के बाद और तुकाराम रगनाथ स्वामी के पूव सालहवी शताब्दी में लतीफशाह का काल निश्चित होता है।

लतीफशाह की रामभक्ति साम्प्रदायिक बधनी व पर थी। राम कृष्ण विटठल एक ही परमतत्व के नाम हैं, ऐसा उनका विचार था। लतीफशाह की समाधि शानापुर जिले में भगलबड़े ग्राम में भुईगतली (वाड न० 3) में है धूलिया व समय वाग्देवता मंदिर में लतीफशाह के तीन हिंदी पद तथा एक मराठी पद हैं। इन्हीं पदों में भी लतीफशाह की भक्ति की प्रगाढ़ता और परमायिष उच्चता स्पष्ट हो जाती है। इन्हें धड़ालु भवन बड़े चाव से गाते हैं।

राम नाम नौबत बजाईं ।]

पहिची नौबत नाएदतुवर । दुसरी नामा कबीर सुनाईं ॥

तिसरी नौबत सुगमा की प्रह्लाद की जिन्ने राखी बडाईं ॥

चौथी नौबत जन जसवत की । धना जाट और मीराबाई ॥

कहन लतीफ सुन भेरे भाईं । उनक ये कुछ तनक बजाईं ॥

श्रीराम भवन कबीरजी को रामनाम के साथ-साथ श्रीरामभक्त का संग भी प्रिय है जो रवय भवसागर पार पार दूसरा को भी पार कराते है।

राम नाम तिन कु, हमारी राम राम तिन कु ।

जो सर प्राणी हरि के उपासक । आभ तरे तारे जीरन कु ॥

आता मनसा पचही प्राण । छोड़ चले उन कु ॥

कहे लतीफ म पूगू उन कु । सुमरत मुरलीधर कु ॥

सता की सगति म परमसुख का जादू तन क कारण लतीफजी को परमाथ
का रास्ता भूली हुई जनता पर दया आती है। भ्राति म पड हुए दम क कारण
आत्मवचना करनवाल लागे क लिए लतीफजी कहत हैं —

भूला जग आधा, बाबू भूला जग आधा ।

ऊपर हावे अदर मला, जाव वारानसी गगा ॥

क्षठ के अदर साधु की निदा, बडा गुहेगार बदा ॥

कहे लतीफ म फररी चदा, लगा कुनी कुचदा ॥

संत यारी साहब

इसका पूरा नाम मारमुहम्मद था। यारी साहब का पूरा नाम "अबुलखसी शाही परान से मतलाया जाता है। अपन ऐश्वर्यमय जीवन का परित्याग करके वह फकीर बन गये। जब इनका सत्संग बीर साहब के साथ हुआ तो वह मन मत म दीक्षित हुए। अब और यारी साहब के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनका जीवन की घटनाओं का जघिन विवरण नहीं पाया जाता। इनका आविर्भाव का समय यावरी ग्राम की बशायती के अनुसार विंशम सवन् 18 वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है। इनके पांच शिष्य थे कनकदास गुपीसाह, सागरनाथ, हरकमुहम्मद और बूना साहब। वह गाजीपुर के निवासी थे, जहाँ इस पंथ की एक गद्दी अभी तक प्रविष्टित है। यारी साहब की रचनाओं का एक छांट या संग्रह रत्नावली के नाम से प्रसिद्ध है।

शाली

या जत अनहद बागुरी, तिरयेनी के तीर ।
 राग छनीसों होइ रहे, गरजत गगन गभीर ॥
 आठ प्रहर निरलत रही, स मूल सब हजूर ।
 कह यारी घर ही मिन, काह जाते दूर ॥

पद

(1)

हमारे एक अलह प्रिय प्यारा है ॥ देख ॥
 घट घट नूर मुहम्मद साहब, ताका सकल पसारा ह ॥
 चोदह सबक जाकी टसनदी, मिलमिली ज्योति सितारा ह ।
 येनमून बचून अहिना, हिंदू गुरक से मारा ह ॥
 सोई देख दरत नोज पायो, सोई मुसलम सारा ह ।
 आधी न जाये मद नहि, जीव यारी घर हमारा ह ॥

(2)

बिरहिनी मविर बिधना वार ॥टेक ॥
 बिन बातो बिन तन गुणति मो, बिन दीपक उजियार ॥
 प्राण पिया मेरे गूह आयो, रचिवचि सेज सवार ॥
 सुगमन सेज परम तत रहिया, पिय निर्गुन निरकार ॥
 गात्रहू रो मिनि खानद मगन, पारो मिली के वार ॥

(3)

शिलमिल शिलमिल बरस तूरा, नूर जूर सदा भरपूरा ॥
 रुनझुन रुनझुन अनहुद बाज, भवर गुंजार गगन चढ़ि गाज ॥
 रिमशिम रिमशिम बरस मोती, भयो प्रकाश निरज ज्योति ॥
 निरमल निरमल निरमल नामा, पह पारो तह लियो बिहामा ॥

(4)

बिन मदगी इस आलम में, साना कुठे हुआम ह रे ॥
 बवा कर सोई मदगी, खदमत में आठो जाम ह रे ॥
 पारो मौला बिसिरि के, तू पया लगा येकाम ह रे ॥
 कुछ जीत प्रदगी कर ले, जासिर को गोर मुकाम ह रे ॥

(5)

गुद के चरण को रज ल क, दोउ नन के बीच अजन दिया ॥
 तिमिर भेटि उजियार गुना, निरकार पिया को देण दिया ॥
 कोटि सूरज तह छिपे धने, तोनी लोक घनी धन पाह पिया ॥
 सतगुरु ने जो कगे कृपा, मर के पारो गुगजुग जिया ॥

वाजिन्दजी

वाजिन्दजी दादूजी महाराज क एक सौ बाबा शिष्या में से थे। वह तीर में एक दिन तिसी हिरन का शिकार कर रहे थे। तीर चवान क पहने उनके हृदय में कल्याण का उद्देग उत्पन्न हुआ। इसमें उनका हृदय में परिवर्तन हुआ। उन्होंने वही तीर-रमान तोड़कर फेंक दिया और सद्गुण की तलाश में निकल पडे। दादूजी से उपदेश ग्रहण करके वह साधना में लीन हो गये। वह जाति से पठान तथा मजहब से मुसलमान थे। दादूजी का शिष्यत्व ग्रहण करने के पश्चात् उन्होंने जाति और धर्म का सबंधा परित्याग कर दिया।

वाजिन्द जी की रचना छोटे छोटे चौदह ग्रन्थों में है। इनके ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं (I) ग्रन्थ गुण उत्पत्ति नामा (II) ग्रन्थ गरज नामा। (III) ग्रन्थ प्रेम नामा। (IV) ग्रन्थ गुणनाम माला आदि। इनके ये ग्रन्थ प्रायः दाहा चौगाई, छदा में हैं। इनकी रचना में हिन्दी भाषा का प्रयोग बहुत विशुद्ध रूप में हुआ है।

वाजिन्दजी का काव्य

(1)

एक राम की नाम लीजिये नित्य रे। और बात वाजिन्द चढ़े नहि चित्त रे ॥
बडे धोयव हाथ आपणें जीव सू। हरि हो दास आज तज और बध ह
पोवसू ॥

जग के औरो देव निजर नहि आय ही। बिना आपणें इस शील नहीं नायही ॥
साथ रहे शिर टेक प्रभु के पोर सू। हरि हा ! दास पास दिवान बिध ब्यू और
सू ॥

अबिनासी की ओट रहन हरन दिन। बिना प्रभु के पाय भज नहि एक दिन ॥
जेंते जग के जीव जरत ह धून में। हरि हा ! दोपक ले दोऊ हाथ परत ह
कूप में ॥

भगत जगन में घोर जानिए ऐन रे। इबास शरद मुल जरद निमंले तेन रे ॥
दुरमति गई सब दूर निकट नहि आय हों। हरि हो साथ रहे मुखमौनक
गोविन्द गावहीं ॥

वाजिदजौ

कुजर कोरी आदि सय सू हेन ह, हिरव उग्र ग्यान बुद्ध नहीं वेत ह ।
 दया मया मुख मोत अत्यो नहि बोलि ह, हरि हा ! इन साधन के साथ
 नाथ ज्यू बोलि ह ॥

कहा वरणे वाजिद बडाई जन की, काम कल्पना दूर गई सब मन की ।
 अष्ट सिद्धि नव निद्धि फिरत ह साथ रे । हरि हा बुनिया रग कसुम्ब गहे क्यू
 हाय रे ॥

(2)

सतगुरु शरणे आयके तामसत्यागिये ।
 बुरी भली कह जाय ऊठ नहि लागिये ॥
 उठ लाग्या में राड राड में नीच ह ।
 हरि हा जाघर प्रगट क्रोध सोई घर नीच ह ॥
 कहि कहि वचन कठोर खरूठ नहि घोलिये ।
 सीतल साना स्वभाव सदन सू बोलिये ॥
 आपन सीतल होय और भी कोजिये ।
 हरि हा, बलती में सुण मोत न पूला बीजिये ॥

वपनाजी

दादूजी महाराज के वाक्य प्रधा शिष्या म वपनाजी अत्यंत थे। यह नरायणा ग्राम के रहने वाले थे। नरायणा ग्राम सागर से तो कुछ पूर्व में दक्षिण की ओर बसा हुआ है। वह इसी ग्राम में पैदा हुए थे और वही उनका दहानस्थान हुआ। इनका जन्म के सम्बन्ध में कुछ विशेष जानकारी नहीं है। इन्होंने दादूजी महाराज से उपदेश लिया था। दादूजी महाराज सागर में सन् 1620 से 32 तक ठहरे थे। वपनाजी का जन्म 1600 से 1610 के बीच माना जाता है। वह मुसलमान थे और जातीय अभिमान से मुक्त थे। दादूजी का उपदेश लेने पर भी वह गृहस्थ ही रहे। वपनाजी का दहानस्थान दादूजी के पास हुआ। दादूजी के विषय में एक पद गाया गया है, उससे दादूजी के प्रति उत्तरी अगाध श्रद्धा परिलक्षित होती है। वह पद निम्न प्रकार से है —

बीछड़िया राम सनेही रे, म्हारे मन पछनाको ये हो रे ।
 झिलपी सपी सहेली रे, ज्यों जन बिन नामर घेली रे ॥
 वा मूलकनि को छवि छोड़ी रे, म्हारे र गई हिरवा भाही रे ।
 कोऊहि जपिहारे नाही रे, तू डूबि रहो जग माहि रे ॥
 सब फोको म्हारे भाई रे, मडली को मडण नाही रे।
 कृण समा में सोहे रे, जाकी निमल घाणी मोहे रे ॥
 मरि मरि प्रेम पिलाये रे, कोई दादू आणि मिलाये रे ।
 वपना बहुत बिसूरे रे, दरसन के कारण मूरे रे ॥

इस पद से यह पता चलता है कि वपनाजी दादूजी महाराज के दहानस्थान के समय मौजूद थे। संभव है वपनाजी 1660 से 1680 के बीच में ब्रह्मलीन हुए हों। इनका रचना काल 1640 से 1670 तक समझा जाता है।

वपनाजी के जीवन की दो घटनाएँ इस प्रकार हैं। वपनाजी की जावाज बहुत सुरोनी थी। उन्हें गाने का शौक भी था। वह साधारण मित्र मडली में बैठकर मनाविना ही दृष्टि में गाया करते थे। एक बार वह गीत गा रहे थे। दादूजी वही से गुजर रहे थे। वपनाजी के उस गीत का भाव अच्छा नहीं था। दादूजी के मन में आया कि यह व्यक्ति जिस प्रेम से तल्लीन होकर गीत गा रहा है, उस

वपनाजी

प्रेम से तल्लीन होकर परमात्मा का गुणानुवाद गाये तौ कितना अच्छा होगा। बाद में शिष्य बन जाने पर दादूजी ने यही उपदेश दिया। उनके उपदेश से स्थिति बदल गयी और वपनाजी ईश्वर का गुणानुवाद करने लगे। इसकी पुष्टि उही के शब्दा में -

म्हारे गुराँ कहयो सोई कर स्यु हो ।
लार समद में मीठी बरो कर स्यु हो ॥

बूसरी घटना है दादूजी के परचात गरीबदासजी नरायणा म विराजमान थे। जजमर जात समय जहागीर ने नरायणा ठहरकर उनकी परीक्षा करने का विचार किया। जहागीर ने काजी और पंडिता से यह प्रश्न थिया कि परमात्मा ने यह सप्टो किस समय रचि। इस प्रश्न का उत्तर वपनाजी ने जैसा दिया वैसा ही उहाने अपन वाणी म सकैत थिया -

प्रश्न : काजी पण्डित बुझिया, किन ज्वाब न दोया ।
वपना वरिया कौण थो, जब सब कुछ कौया ॥

उत्तर : जिहि वरिया यह सब हुआ, सो हम किया विचार ॥
वपना, वरियाँ खुशो की, करता सिरजनहार ॥

वपनाजी का उत्तर बहुत ही सगतपुण है। चेतन का ससग प्रवृत्ति से होता है, तब सत्व गुण को अभिवृद्धि होती है। सत्व गुण को आनन्द रूप माना गया है। वपनाजी गवये थे। ग्राम्य भाषा म जीवन के प्रश्न को सुलवान का महात्माओं का यह प्रयास हिंदी साहित्य के लिए गौरव की बात है।

साखी

ढूढें दोष पतग नैं, तो वपना बिरद सेजाई ।
दोषक माह जोति ह्व, तो घणा मिलगा आई ॥

मल्या न फूटें चिणग न छूट, जरणा कहिये ताहि ।
वपना कह समाई तिहि म, सो बोलि बिगूच नाहि ॥

अठसठि पाणी घोइये, अठसठि तोरथ हाई ।
कहु वपना मन मच्छ की, अजौं कौलाधि न जाई ॥

जिहि वरिया यह सब हुवा, सो हम किया विचार ॥
वपना वरिया खुशो की, करता सिरजनहार ॥

अणदीठे जोलू कर रे, मो मन बारम्बार ।
असल फूटा क्यार ज्यु, म्हारे नण न पठ धार ॥

शाह अली कादर

मराठी सत वाक्य के क्षेत्र म मुसलमान कविना न जिंग प्रराग महसूखण स्थान प्राप्त विया है, उसी तरह मराठा शायरी क क्षेत्र म भी मुसलमान कवि आगे रहे हैं। बलगा, सुरेकी शायरी म शक्ति पक्ष क अग्रणी क रूप म शाह अली का नाम मशहूर है। इम शाह अली का जन्म चरित्र आज उपलब्ध नहीं, परतु इमरा शिष्य सम्प्रदाय आज भी महाराष्ट्र क मराठवाडा म है। शाह अली कादर पशवाईक समय म मराठवाडा म पैदा हुए ऐसा अनुमान है। सुरनगीर सुरवाल का प्रतिस्पर्धी हान क कारण उनकी विशेष ख्याति है। तारु बापू नामक शायर न एक मुजर में “शाह अली कादर डफ पर कतगा निगान फडने जरी।” ऐसा उल्लेख किया है जिससे उमरा पूरा नाम ‘शाह अली कादर’ मालूम हाता है।

सूफी मत और बलगीवाला की विचार सूचा में साम्य हान के कारण या कुछ सूफी सम्प्रदाय के गायुआ द्वारा बलगी सुरकी आध्यात्मिक चर्चा म रस लेन क कारण, सूफीमत का आध्यात्मिक शायरी पर—विशेष रूप से बलगीवाला की रचनाओं पर—विशेष ध्यान दिखाई देतो ह। बलगी और सूफी दोनों पक्ष अद्वैतवादी हैं। बलगीवाला न कुछ हिंदी छंद लिखे हैं, जिस पर उर्दू भाषा का खूब प्रभाव पडा है, जिसे मुसलमानी छंद भी कहा जाता है। जैसे —

कहो बिसमिल्ला सबका मालिक अल्ला हूं ।

या

पढ़ो सुम कलमा महमद का ।

इस कलमे का पढ़े उज्याला उमेद रसूल का ॥

कलमा का यह है रोयाने ।

इशर के दिन तुझे पूछेंगे करो बयान ॥

कलमा पढ़ो ओ जिसने ।

जन्नत ह ये मखबल हाक उठे रोयाने ॥

शाह अली कादर

शाह अली की परम्परागत शायरो ने शाह शौली की कीर्ति ध्वजा को आगे बढ़ाया है ।

शाह अली ऊस्ताद कहे, जा सतगुरु क चरण धरो ।
शाह अली मुरशद कहे ॥

शाह अली ऊस्ताद दोर, हमारे लेबन सरिनारे ।
शाह अली की चोट बली, ला-प्राली-या चमार का ॥

तुम परकडकर बकरा बनाऊ, शाह अली के सुन घर का ।
तुम नगीर पर सवाई सोटा, बाजे शाह अली फकीर का ।

शाह अली शायर खुद ह ग्यानी, सवाल सुनी रणजीत सिंग का ॥

शाह अली प्रतिभा सम्पन्न शायर था । उसने नरली शायरों को अपनी कविता द्वारा खूब लताड़ा है ।

छद परायै घुरा ला, अपनी छाप लगात ह ।
अगरुचे ऐसे कुरों को, हम आहना दिखलाय तो क्या ॥

अधे को आहना दिख, ये समस्त में आना मुश्किल ह ।
सिवा इल्म के किताबो से, इद गाना मुश्किल ।

लाख नड कायर सूरु से, फतह का पाना मुश्किल ह ।

शाह अली सुफी मतानुयायी हान के वारण भगवान श्रीकृष्ण के प्रति विशेष धडा रखत थे । श्रीकृष्ण क मुरलीनाद का विशेष वणन करनेवा न दा व्यक्ति ह जिनक पद सुंदर आध्यात्मिक भावा स ओतप्रान है —

काला कृष्णजी खडा जमुना पे, जिधर खडी सब ब्रजवाला ।
बालापन में विरह की ज्योत, जगावे वो नदलाला ॥

लाला नद का बजा के बसो, बसो में जादू डाला ।
डाला जादु मोहन ने, धर दी गले में मोहनमाला ॥

माला गले में डाल चकीर, चित चोट लगी करन वाला ।
चाला करने लगा और, मार दिया मोह का भाला ॥

माला भयभीत लगा सखी रो, जरा नहीं देखा भाला ।
काला कृष्णजी खडा जमुना पे, जिधर खडी ब्रजवाला ॥

मुरली का नाद सुनकर गोपालबाला मुग्धबुध भूल गयीं । शाह अली ने गोप-
हृदय का वणन कितना अच्छा किया है । मुरली का दिव्य नाद सुनकर गोपिया
की भ्राति नष्ट हुई है ।

चल जमुना के तीर, बाजत मुरली रो, मुरली रो ॥५०॥
मुरली सुन काहा की नोकी, नगर नारी सगरी चीकी ॥
सुध न रही बाके तन की, मगन भई नारी गोकुल की ।
अब मुम सुनो रो, सुनो रो, ॥
सगरी चली जल जमनाकु, सिर पर घगरी ले पपियाकु ।
हंसती चली छोड लडकन फु, डेर सुन मुरली की मनकु ॥
व्याकुल भई रो, भई रो ।
कृष्ण अवतार विष्णुजी के, नित वो सेवा समुजी के ।
छद बजावत मुरली के, चरवया गो और बधरन के ॥
यू दावनमो रो, वनमो रो ॥
जद शकर की किरपा भई, तद काहा मुरली यजाई ।
शाह अली कहते, अब गई, भ्रात मनकी रो, मनकी रो ॥

दरिया साहब (मारवाडवाले)

भारतवर्ष में दरिया साहब के नाम से दो प्रांतों में सत हुए हैं। एक का जन्म मारवाड (राजस्थान) में हुआ तो दूसरे का बिहार में हुआ। दोनों सूफ़ी सम्प्रदाय के सिद्ध साधु थे। हिंदू और मुसलमान दोनों उनका सम्मान करते थे। दोनों महात्माओं के दृष्ट और वाणी भिन्न हैं। दोनों की वाणियाँ उच्च कोटि की हैं और अपने ढंग से निराली हैं। मारवाडवाले दरिया साहब बिहारवाले दरिया साहब के दो वर्ष पीछे पैदा हुए और राईस वर्ष पहले मृत्यु को प्राप्त हुए। दोनों महात्मा मुसलमानी माता-पिता से पैदा हुए। मारवाडवाले दरिया साहब की माता धुनियाइन थी और बिहारवाले की दरजिन। दोनों शब्दमार्गी थे। दोनों एक ही समय में रहे। बिहार के दरिया साहब के पथवाले दरिया साहब मारवाडवाले के पथवाला से गिनती में अधिक हैं।

दरिया साहब मारवाडवाले का जन्म मारवाड के जंतरन नामक स्थान में सन् 1676 ई० में एक धुनिया मुसलमान परिवार में हुआ था। अपनी जाति का उल्लेख उन्होंने अपनी वाणी में इस प्रकार किया है —
जो धुनिया तों भी मैं राम सुम्हारा।
अधम कर्मोन जानो मतिहीना, तुम तो ही तिरताज हमारा ॥

इनके पूर्वज हिंदू थे, परंतु आगे चलकर उन्होंने मुस्लिम धर्म को स्वीकार कर लिया था। उस समय इस श्रेणी के हिंदू या मुसलमान किसी भी व्यक्ति को धर्म की साधना का मांग प्राप्त करने का अवसर नहीं मिलता था। उन्होंने स्वयं लिखा है 'नाह था राम रहीम ना, मैं मतिहीन आता'

प्रारम्भ में वह समाज द्वारा तिरस्कृत थे। ये सब यह सात वर्ष के थे तब इनके पिता का स्वर्गवास हो गया। उसी बाद द्वारा लालन पालन दादी कमीरा के घर हो गया। कमीरा कन्नौरी गरीब औरत थी। इनका नाम का नाम कमीरा था। उसी रात्री धम्बधी तिरकार, परंतु भक्तिरस में सत्तलीन थे। दासी के घर में भीगी की भक्ति तथा गीता में प्रति गम्भीर अनुसंधान था। दरिया साहब का प्रपणन से ही भक्ति की धोर

झुकाव था। दरिया साहब पढ़े लिखे नहीं थे। भक्ति के माग की आर जगसर होन की दृष्टि से दरिया साहब ने मुसलमान मुस्लाआ तथा हिंदू पंडिता की शरण ली। परंतु किसी ने उनकी ओर ध्यान ही नहीं दिया। आखिर इस बात का उहोने निश्चय किया कि इनके पास इस दृष्टि से देने योग्य कुछ भी नहीं है। इसलिये उहोने जाना बद कर दिया।

जो मानव सच्चे लगन से परमाथ के पथ पर चलता है उसे एक न-एक दिन पथ प्रदर्शक मिल ही जाता है। सहज रूप से पता चलन पर एक दिन दरिया साहब प्रेमजी नामक सत के पास चले गये। सत प्रेमजी बीरानेर के पास खियानगर म रहते थे। प्रेमजी दादूदयाल के शिष्य थे। कुछ भक्तों का विश्वास है कि दादूदयाल ही दरिया साहब के रूप में फिर सं प्रकट हुए। दरिया साहब के पथ के लोग का विश्वास है कि -

देह पंडिता दादू कह, सो बरसा इक सत।

रन नगर मे परगट, तारे जीव अनंत ॥

उपयुक्त दोहा दादूजी ने दरिया साहब के जन्म के सी बष पहले कहा था। प्रेम जी नामक सत को दरिया साहब ने अपना गुरु मान लिया। प्रेमजी सिद्ध महात्मा थे। उनकी साधना के आदिगुरु थे साधक श्रेष्ठ दादूदयाल। सत प्रेमजी के ससग ने दरिया साहब दादूदयाल के भावा से भरपूर हो उठे। कुछ भक्तों का कहना है कि दरिया साहब दादूजी के अवतार थे। उहोने रैन गाव में अपनी कुटिया बनाई और फिर जन्मभर इसी गाव में रहे।

इस समय बर्तमानही मारवाड के राजा थे। कहा जाता है कि महाराज बर्तमानही असाध्य रोग से बीमार थे। इलाज बहुत किया गया, कोई लाभ नहीं हुआ। आखिर बर्तमानही दरिया साहब के पास गये। उहोने दोनता में प्राथना की। दरिया साहब ने दया करके अपने शिष्य सुखरामदाम के द्वारा उपदेश दिया। बर्तमानही ठीक हो गये।

दरिया साहब की राम का साक्षात्कार हो जाने पर उनके ज्ञान चम्पु खुल गये। यह सभी पदार्थों में राम का दर्शन करने लगे। दरिया साहब की वाणी द्वारा उनके जीवन और उनकी साधना का इतिहास और त्रम विकास माफ-माफ मालूम होता है। जब दरिया साहब मृत्यु की यात्रा में निकले तो, उहोने देखा कि सभी अपनी अपनी मन्त्रदायिता की सकीणता को लेकर व्यस्त हैं। किसी का मृत्यु के साथ साक्षात्कार नहीं हुआ है।

दरिया साहेब (भारवाड वाले)

दरिया माहन बडे सिद्ध महात्मा हुए। हिंदू और मुसलमान दानो सम्प्रदाय के लोग उनक उपदेशा द्वारा आकर्षित होकर भक्त हुए। सन 1758 ईसवी म 82 वष की अवस्था मे उन्होंने शरीर त्याग दिया। इनके पथ के भक्त लोग आजकल अगहन की पूर्णिमा को उनकी पुण्य तिथि मनाते हैं। इस पथ के हजारों आदमी भारवाड मे है। इनकी वाणी के कुछ अंश इस प्रकार हैं -

पूरनहारा पूरसी, कल्प मतमाई ॥टेक॥
नाम भरोसा रासिय, ऊनित नहि कोई ॥

जल दिर ब आकास से, कहो कह से आय ।
बिन जतना ही चहु दिया, बह चाल चलाय ॥

चात्रिक मूजल ना पिव, बिन आहार जीव ।
हर बाही को पूरब, अतर गत पीवें ॥

राजहस मुक्ता चुग, कुछ गाठ ना बाधे ।
ताको साहेब देत ह, अपनी श्रत साध ॥

गरभवास में आपकर, जीव ऊधम न करही ।
जानराय जाय सब, उनको घटि भरहि ॥

तोन लोश चौबह भुवन, कर सृज प्रकासा ।
जाक तिर समरय घनी, सोच क्या दासा ॥

जवसे यह बसक बना, सब समझ बनाई ।
दरिया विकल्प भेंट के, भज नाम सहाई ॥

आदि जनादि मेरा साई ॥टेक॥
दृष्ट न गृष्ट ह अगम अगोचर ॥

यह सब माया उनकी माई ।

जो बनमाली साँच मूत, सहजें पिय डाल फल फूल ।

जो नरपति को गिरह बुलाव, सेना सकल सहज ही आव ॥

जो कोई कर मान प्रकास, तो निसतारा सहजहि नासु ।

गरुड पल जो घर में लाव, सप जाति रहने नहि पाव ॥

दरिया मुमरि एकहि राम, एक राम सार सब काम ।

कमाल साहब

महात्मा कबीर उच्चनाटि के महात्मा थे। जाश्रुति ने अनुमान उनको एक लडका तथा एक लडकी थी। लडके का नाम यमाल था और लडकी का नाम कबीरजी। कबीरजी का प्रभाव स यमाल का हृदय में बरपन से ही प्रभु के प्रति प्रेम भक्ति उत्पन्न हो गयी थी। यमाल साहब ने अरबी और फारसी भाषा की शिक्षा भीर तनी साहब से पायी थी। भीर तनी फारसी और उर्दू के प्रसिद्ध कवि थे। यह सूफी विचार का थे। बादशाह गिददर सोनी के पीर थे। यमाल साहब के जाध्यात्मिक गुरु तो कबीर साहब थे, परन्तु भीर तनी के सांनिध्य के कारण यमाल साहब पर मुस्लिम धर्म की पक्की छाप पड गयी थी, इसी कारण उनका मुकाब इस्लाम धर्म की ओर अधिग रहा। बंस यमाल साहब मस्त रहते थे। सत कबीरजी तथा यमाल के मित्रता में मतभेद नहीं था। हो सकता है कि सत कबीरजी के हिन्दू मुस्लिम एकता का विचार यमाल साहब को पसन्द न हो। इसीलिए शेष तनी से अलगा रहने की इजाजत, उहान ली थी। वह जौनपुर में रहते थे।

बंस यमाल थोड़ा दूर के साथे। स्त्री जाति की ओर उहान जीवन पयत आप उठाकर भी नहीं देखा। धन से उहें घना थी। निदा-स्तुति में समान रहते थे। यद्यपि मत्संग में वह सर्वोच्च थे, पर इस्लामी विचारों के कारण कबीर साहब की गद्दी इनको न मिली बलिक वह धमदासी के हिस्से में गई जिग पर आज भी धमदासी की मत्ताना का पन्ना है।

जनश्रुति के अनुसार यमाल साहब कबीरजी के पुत्र थे। परन्तु वास्तविकता तो यह है कि इनके जन्म तथा जाति के बारे में कुछ भी पता नहीं चल सका। कहा जाता है वर्षा के दिन थे। गंगा में बाढ़ आने के कारण वह जोरा से बह रही थी। प्रयाग के पास एक टीले पर भीर तनी और कबीर साहब बातचीत करने बैठे थे। सहर परिया की तरफ घाल गया। देखा एक सुन्दर बालक पानी की तेज धारा में बट रहा है। भीर साहब ने मन में दया आयी। उहाने मन में सोचा कि इसे बचाना चाहिये। कबीर साहब से उहाने कहा कि इस बालक को बचाना चाहिये। कबीर साहब ने कहा कि महा कोई तराव तो है नहीं, जो

इस तेज पानी की धारा में घुसकर इस बालक को निकाल लाये। अगर हिम्मत है तो मानसिक शक्ति से इसे इधर खींच लीजिये। मीर साहब ने आखें बंद की। वह अपने पूर मनोबल से उसे खींचने लगे। उनके इस प्रयोग से बालक बहुत दूर तक खिंचा, पर अंत में मीर तकी थक गये। उनकी हिम्मत टूट गयी। खींचा हुआ बालक वापस जाने लगा। मीर साहब ने कहा—कबीरजी, मैं थक गया हूँ। अब आप अपनी ताकत लगाइये। अब आपकी बारी है। कबीर साहब ने पुरत अपनी सरलप शक्ति का प्रयोग किया और थोड़ी ही देर में उस बालक को बिना रे पर लाकर छाड़ दिया। देखा तो बालक का शरीर फूला हुआ था। सास बंद हो चुकी थी। दोनों ने उसे उलटा कर जल निकाल दिया। कबीर साहब ने परवाया में प्रवेश किया। उससे उसके शरीर में प्राण का संचार हो गया। शरीर म जान आयी और बच्चे ने आँखें खोल दी। कबीर साहब उस बच्चे को घर ले आये। कबीरजी की पत्नी माई लोई ने उसका पालन-पोषण किया। बड़ा होने पर वही बालक कमाल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह है कमाल साहब के कबीर के औरस पुत्र होने की घटना।

अभी कमाल साहब उम्र में छोटे ही थे। बचपन में बच्चे आपस में खेलते ही हैं। उम्र उस समय केवल छ सात वर्ष की होगी। वह लगोटी पहनकर समकक्ष बच्चा में खेल रहे थे। लगोटी वार-वार खुल जाती थी। कबीर साहब बैठे बैठ बाल-लीला देख रहे थे। कबीर साहब ने कहा—बेटा कमाल! लगोटी बस के बांध। वार-वार खुलना अच्छा नहीं। बालक कमाल को यह शब्द खटके। कमाल ने लगोटी पस ली और कहा—पिता ने आज मुझे लगोटी बंद बना दिया। उसी दिन से उनका वराम्य हो गया। ससार की सब वस्तुआ से वह उदासीन रहने लगे। अखण्ड ब्रह्मचर्य में तल्लीन रहकर उन्होंने अपनी जीवन-लीला समाप्त की। जिस दिन से मीर साहब ने इन्हें लगोटी बसने की आशा दी थी उसी दिन से इनके मन में पूरक रूप से वराम्य उत्पन्न हो गया था। वह सी की और आप उठाकर भी नहीं देखते थे। हर समय वह मस्तो में रहते थे।

एक दिन एक महाजन बहुत सा धन लेकर कमाल साहब के पास आया। वह कमाल साहब को धन भेंट करना चाहता था। कमाल साहब ठहरे मस्त फकीर, उन्होंने धन को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। रात को जब वह नींद में थे तो किसी ने एक कीमती हीरा उनकी पगडी में बांध दिया। कमाल साहब को पता ही नहीं था। कुछ दिन बाद वराम्य साहब वाणी पढ़े। वाणी ता प्रेमी

लोग उन्हें पहचान जाये थे जिसमे वह महाजन भी था। जब कमात साहब कबीरजी के पास पहुँचे तो देखा कि पगडी म गाठ बधी हुई है। कबीरजी ने पगडी उतार ली। गाठ खोलकर देखा तो उमम बहुमूत्य हीरा था। कबीर साहब का क्रोध आया। बोले—बेटा कमात ! तूने यह क्या किया ? तुझे तो बंराम्य की शिक्षा दी और तू धन इकट्ठा करने के काम में लगा है। गा, तू हमारे काम का नहीं। हमारे नाम को तू बदनाम करने वाला है। जागे तेरा वश नहीं चलेगा। इस सम्बन्ध में यह साखी प्रसिद्ध है -

नाम साहिव का बँचकर, घर लाये धन माल ।

बूडा वश कबीर बा, जन्मे पूत कमाल ॥

कमात ने विनय की हाथ पंर जोडे। उसने कहा—पिताजी मुझे इस बात की खबर नहीं। महाजन पास में था। उमन कहा—महाराज यह भेरी ही करनी है। महाजन न सफाई दी। कबीर साहब न माता कर दिया, परंतु सच्चे सत के मुह से जो शब्द निकल जायें, वह जमर करे बिना नहीं रहते। इतन उच्च कोटि के महारमा होते हुए भी कमात साहब से किसी न लाभ नहीं उठाया। इस तरह उनकी दीक्षा उन्हीं के साथ चली गई।

एक दिन एक कोढ़ी बड़ो दूर से आया था। उसने कबीरजी के मरान के पास जाकर कबीर साहब का पता पूछा। कमात वहा पर खोल रहे थे। वह खोल—पिताजी तो बाहर गये हैं। कितने दिना बाद तोटगे, पता नहीं? अगर कोई खास काम हो तो मुझे बता दो। मैं उनसे कह दूगा। काढी की जाखान आया आये। वह कहन लगा—मैंन सुना है कि सच्चे सता का कवल कृपा दृष्टि से पापा का मवनाश हो जाता है। जनना जादन क मुह से कबीर साहब की बडी प्रशसा सुनी है। इसी दृष्टि से मैं जाया था कि उनकी कृपा दृष्टि से मरा कष्ट दूर हो जाय। परंतु क्या कर? भाग्य ने गहा भी टोकर छापी। घर जाना और फिर वापस आना मेर लिए कठिन है। मैं कई दिना बाद काशी से चलकर जाया हू। अब कहा जाऊ क्या कर ?

उस काढी की दीन दशा देखकर कमात के मन में दया उमड पडी। कमाल ने कहा—अगर केवल इतना ही काम है तो मैं उसका उपाय बता देता हू। सच्चे हृदय से केवल तीन बार रामनाम का उच्चारण करा स आप अच्छे हा जाएगे।

उमने ऐसा ही किया। थोड़ी देर में उमर सारे गम सूप गये। वह अच्छा होकर खुशी-खुशी अपने घर चला गया। कबीर साहब जब घर लौटे तो कमाल साहब ने बड़े गव के माथे अपने किये हुए काम का बखान किया। बच्चा का स्वभाव हाना ही है कि जब बाई विशेष नाम उनका हाथ से हा जाता है, तो वे खुशी से माता पिता को अवश्य सुनाते हैं। कबीर साहब ने इस बात का सुनकर उलटा मुह बिगाड़ लिया। गुस्त में जाकर बान—तून राम के नाम का प्रभाव ही जाना। नाम में इतना रहस्य छिपा हुआ है कि तीन बार नहीं, यदि एक बार भी जात दशा में दिल में राम शब्द का उच्चारण कर ले तो उसके सार, सकट और कष्ट दूर हो जाते हैं। तून तीन बार की आपा को व्यय किया। इससे तो उल्टा राम की महिमा का धक्का पड़चा। पर महो रूप में देखा जाय तो बाल्यावस्था में कमाल ने कमाल ही कर दिया था, जो क्षण भर में काढ़ी के घाव भर और उसे स्वस्थ बना दिया।

कमाल की हिंदी-ब्राणी बहुत बनाने जाती है। परंतु इसका स्वतंत्रता से अभी तक सन्तान नही हुआ है। गीचे उनके पद उदाहरण के लिए दिये जाते हैं -

अजर अमर अधिनाशो साहिव, नर देही क्यों आया ।
 इतनी समझ बूझ नहीं मूरख, जाय जाय सो माया ॥
 गाठ खुली नहीं जठ चेतन की, ग्यान कयें घे अन्ता ।
 सत असत की खबर न आई, जाने न सत असता ॥ १ ॥
 जानो ज्ञान कयें निस वासर, वह तो अति अज्ञानी ।
 निज मन की कुछ सुधि नहीं पाई, आठ पहर अभिमानो ॥
 राजा दुखी, दुखी बनवासी, दुखी र क विपरीती ।
 गुरु कृपा के सवि सुखी भये, मन चंचल को जीती ॥
 सुख नही दौलत माल लजाना, सुख रहि वाद विवाद ।
 सुख ह साध सत की पूजी, लागी मुझ समाधि ॥
 मन दरपन निज मूरति निरली, देखा सकल पतारा ।
 आप आप जान सब जाना, जाना सार असारा ॥

राम नाम भज नित दिन बन्द, और मरम पालण्डा ।
 बाहिर के पट दे मेरे प्यारे, पिण्ड देल ब्रह्मण्डा ॥
 दास "कमाल" कबीर का बालक, गुरु का निजकर प्यारा ।
 शब्द वान की चीट लगी जब, पाया सत करतारा ॥
 पोर पगम्बर की वानी, यारो मस्त भयो निर्बानी ।
 राजा रक बोनों बराबर, जसे गगाजल पानी ॥
 मार करो कुई मूपर मारो, दोनो मीठी वानी ।
 काचन नारी जहर सम देखे, ना पसरे हा पानी ॥
 साधु सत से शीश नमावे, हात जोरकर निर्बानी ।
 कहत कमाल सुनो भाई साधो, ये ही हमारो वानी ।
 ये ही ग्यान मन मो राखो, और कछु ना जानो ॥

दीन दरवेश

सुन्चे ईश्वर भक्त हर एक जाति, धर्म और देश भेददा होने हैं। वे प्राणी मात्र के शुभचिंतक तथा उपकारी होते हैं। दीन दरवेशजी ने मुसलमान के घर पैदा होने पर भी एक महान पथ के आचार्य तथा सम्पादक के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त की। उनकी भक्ति, निष्ठा, काव्यसुधा और अध्यात्मविद्या की पूर्ण सम्पत्ता से, आकृष्ट जनता में इनके प्रति निराला श्रद्धा बढ़ी थी। वह आदर्श सत, परम रसिक भगवद् भक्त थे।

दीन दरवेश सत का जन्म पाटन ग्राम में हुआ था। यह ग्राम गुजरात प्रान्त में है। उनका जन्मकाल विक्रमी सं० 1660 से 1700 तक का बताया जाता है। इनके सम्प्रदाय को दरवेश पथ के नाम से जानता जानती है। इस पथ के वह आचार्य माने जाते हैं। वह बचपन से ही धार्मिक विचारों के थे। बाल्यावस्था से ही इनकी वृत्ति वैराग्य की थी। जब यह बीस वर्ष के हुए, तो इनके मन में वैराग्य तोड़ हो गया। इन्होंने ध्यान दिया और विरक्त होकर भटकने लगे। उन्होंने धार्मिक म्याना पर जाना शुरू कर दिया। इनका जगह-जगह घूमने का मतलब इतना ही था कि जाग्रि सत्य क्या है? इनका भ्रमण सत्य की खोज में ही था।

दीन दरवेश सत प्रथम मुसलमान मुल्ता तथा मौनविया के पास जाते रहे। उनका सतसग मुन्न रहे। उसे हृदय की बमौटी पर मखन रहे, अतः आचार और विचार में मेन न बँडन न कारण इन्होंने मुल्ता मौनविया का सग छोड़ दिया। अब वह सूफी फलोरा के पास पहुँचे और वहाँ सत उनकी सेवा करते रहे। उनका सतसग मुन्न रहे। उनके मतनाय हुए माग पर चलने रहे और फिर भी जय शांति नहीं मिली तो, इन्होंने मुल्ता मौनवी तथा फरीषा का सग छोड़ दिया।

अब इन्होंने हिंदूआ के सभी तीर्थ म्याना पर भ्रमण शुरू किया। नासो, मयूरा, बुदावन, प्रयाग, श्रोताय जादि अर हिन्दू तीर्थ म्याना का दर्जा। वहाँ पर ब्राह्मणों की पूजनकारी तथा पारलोना दियो। सब बाया पाण्डे नजर आया। मन दुःखी में पड गया, फिर भी इन्होंने भ्रमण नहीं छाडा।

मनुष्य जब किसी बात के पीछे पड़ जाता है, तो अंत में उस प्राप्त कर ही लेता है। यही बात दीन दरवेशजी के जीवन में हुई।

एक दिन एक बखोरपथी महात्मा से उनकी भेंट हुई। वह पढ़ा हुआ मिद्ध महात्मा था। उसका प्रभाव दीन दरवेशजी पर पड़ा। उससे वह प्रभावित हुए और उनसे गुरुदोखा ती। गुरु उपदेश के अनुसार वर्षों तक एतान साधना में रत रहे। इससे उन्हें अनुभव मिला और मय का दर्शन हुआ। फिर कुछ काल एतान में रहकर उन्होंने गुरु आशा से जनता में भ्रमण शुरू कर दिया। इस भ्रमण काल में उन्होंने दरवेश पथ की भीषण रण्यी। अब इनका भ्रमण जनता को समाग दिवान के लिए था।

दीन दरवेशजी को गुजराती के साथ मराठी का भी ज्ञान था। काशी में रहने में इन्होंने हिन्दी भाषा का अच्छा ज्ञान प्राप्त हो चुका था। इन्होंने अपनी रचना भी हिन्दी में लिखी है। वने इन्होंने काव्य की रचि प्रारम्भ से ही थी। इनके महा हमशा ही कविया का भाव लगा रहता था। अनेक कवि इनसे इदगिद रहने थे। इनका नियम था कि बड़े हर पुणमासी के दिन अनेक मभी शिष्या तथा कवि मित्रा के साथ सरस्वती तन्ने पर स्नान करने जाते थे। वहां सत्सग रूप में कविया का कवितागान भी हाथा था। हजारों आदमी उसे सुनते थे। जसने में कवितागान का यह हर पथ प्रचार के लिए ही था। इसी में इनका पथ प्रचार का काय मुचार रूप से चलता रहा। इनके सत्सग में शामिल भोनाआ में से बहुत से इनके शिष्य बन जाते थे। इस तरह इनका प्रचार दिनोदिन खूब बढ़ना गया।

दुनिया में अच्छी बात का भी विरोध करने वाले बहुत लोग होते हैं। हिंदू पंडित तथा हिंदू कविया के मन में इस बात की जलन थी। दीन दरवेशजी की बढ़ती हुई शक्ति को लेकर उनके मन में बड़ी ईर्ष्या हा गई। जैसे तो हमेशा ही हिंदू पंडितों ने हिंदू सना से भी बुरा व्यवहार किया है। दीन दरवेश तो बेचार मुसलमान थे। उनसे प्रति ये लोग कहा मानवता बरतने वाल थे। व ता सता की पवित्र प्रभावपुण बाणी का रहस्य भी न समझ सने। परिणाम यह हुआ कि इन पंडितों ने जनता का बहाना शुरू कर दिया। उद्देश्य यही था कि किसी तरह दीन दरवेश को पीचा दिखवाया जाये। परंतु जनमत दीन दरवेश की ओर भी था। जनता ने पंडितों की बाता पर विश्वास नहीं किया। उनकी बुचाला को सकल नहीं होने दिया। अंत में इस बात का निणय हुआ कि गुजरात के प्रसिद्ध

कवि कान का दीन दरवेश से शास्त्राथ कराया जाय। कान कवि संस्कृत के विद्वान् थे। इस काय के लिए त्रिपि तया सिद्धपुर स्थान तय किया गया। निश्चिन समय पर दीना पक्ष के लोग उअस्थिन हुए। पाटनो का ठाकुर उन कायक्रम का मभापति बनाया गया। दीना कविमा का भादपूण सम्मेलन शुरूहुआ। प्रारभ दीन दरवेशजो से कराया गया।

दीनो महान् कविमा की रचनाआ का रम जनता लने लगी। दीनो म अपनो अपनो विशेषता थी, जो किमी एक को महान् बनाकर पूषक नहीं हाउ दतो थो। मात दिन लगातार शास्त्राथ चलता रहा। मभापति ठाकुर माह्व बुछ भी निणय नहीं कर सके। आखिर दोना को समान पुरस्कार दकर विदा करने का निणय हुआ। कान कवि को यह बात पमद नहीं आयी। इस उसक ब्राह्मणत्व के अभिमान को ठस पड़ुचो। उनम ठाकुर साह्व से इस प्रकार निणय लन का कारण पूछा। ठाकुर साह्व ने स्पष्ट शब्दा मे जनता के सामन अपन विचार स्पष्ट किये। उन्होंने कहा -

बाबा दीन द रवश तथा कान कवि दोनों ही महान् है, इसमे कोई शक नहीं। दीना ही कलाकार है। यमे ता यान कवि संस्कृत के प्रवाड पंडित है। सरयुत कविमा की विचारधारा, भावभंगिमा और संस्कृत की गरिमा सभी कुछ कान कवि मे मौजूद है। प्रतिभा को भी आप मे कमी नहीं परंतु दीन दरवेशजो म जो कात है, वह आपमे नहीं। दीन दरवेशजो के काव्य मे भावा की गरलता, वाणी की मधुरता और प्रभावात्मादमना सर्वोपरि है। उनकी प्रभु के प्रति, ईश्वर के प्रति मालिन के प्रति अन य निष्ठा और दोनता न जो जादू उनकी रचना म भरा है उनमे मेर हृदय का अभिभूत और भावविभार कर दिया है। कान कवि की रचना म ईश्वर को बदगी नहीं है, इसी कारण दीन दरवेश की कविता के सामने कान कवि को रचना नहीं रखी जा सकती। यही मरै निणय का आधार है”।

पंडिता को भी आखिर उहे दीन दरवेशजो के महत्व को मानना ही पडा। इन घटना से दीन दरवेशजो की सबल प्रतिष्ठा बढी। जनता के मन पर दीन दरवेशजो के प्रति गहरो छाप पडी। इस प्रसंग म सबसे उनकी प्रसिद्धि हुई। उनके मत का प्रचार बढा। अब इस मत के अनुयायी अधिक नहीं है। फिर भी भारत के दूर दहाता म इन पत्र के अनुयायी भिक्षाटन करते हुए आज भी मिल जात हैं।

दीन दरवेश की फुडली छ'द मे अनत्र प्रभावशाली रचनाए है, जिनमें स कुछ रचनाए उदाहरणार्थ नीचे दी जा रही ह -

(1)

हिद्व कह सो हम बडे, मुसलमान कह हम्म ।
 एक मूग दो फाड ह, कुण जादा कुण कम्म ॥
 कुण पयादा कुण कम्म, कमो करना नहि कजिया ।
 एक भगत हो राम, दजा रहिमान से रजिया ॥
 कह दीन "दरवेश" दोय, सरिता मिल सिधू ।
 सब हा साहब एक, एक मुसलिम इफ हिद्व ॥

(2)

गडे नगारे कूचके, छिनमर घाना नाहि ।
 कौन आज, को कालको, पाय पलक के माहि ॥
 पाय पलक के माहि, समझ ले मनवा मेरा ।
 धरा रहें धन-माल, होयगा जगल डेरा ॥
 कह 'दीन दरवेश', गव मन कर गवारे ।
 छिनमर घाना नाहि, कूच के गडे नगारे ॥

(3)

बदा जान स करौं, करनहार करतार ।
 तेरा किया न होयगा, होगा होवनहार ॥
 होगा होवनहार, जोस नर यों ही उठावे ।
 जो बिधि लिखा ललाट, प्रतद्य फल तैसा पावे ॥
 कह 'दीन दरवेश', हुकम से पात हल'दा ।
 करनतार करतार, करेगा क्या तू ब'दा ? ॥

(4)

बदा बहुत न फूलिये, खुदा खियेगा नाहि ।
 जोर जुलम की ज नहीं, मिरतलोक के माहि ॥
 मिरतलोक के माहि, तजुरबा सुरत दिलाव ।
 जो नर कर गुमान, सोई जग खना खाव ॥
 कहें 'दीन दरवेश', भूल मत गाफिल गदा ।
 मिरतलोक के माहि, फूलिये बहुत न बदा ॥

(5)

कौड़ी मिल न भाग बिन, सीखो हुनर हजार ।
 क्या नर पाव साहिबी, बिना लेख करतार ॥
 बिना लेख करतार, जगत सब फिर फिर आवें ।
 भटक फिर बेकाज, गाठ की लाज गवायें ॥
 कहें 'दीन दरवेश', दुखी चित चहुदिश वीड़ी ।
 सीखो हुनर हजार, भाग बिन मिले न कौड़ी ॥

(6)

बदा बाजी झूठ है, मत साची कर मान ।
 कहां बीरबल गग ह, कहा अकबर खान ॥
 कहां अकबर खान, मत्ते की रह भलाई ।
 फतहसिंह महाराज, दखि उठ चलिग भाई ॥
 कहें 'दीन दरवेश', सकल माया का घघा ।
 मत साची कर मान, झूठ ह बाजी बदा ॥

शेख महम्मद बाबा

पौर शेख महम्मद बाबा का नाम तो महाराष्ट्र की सत मालिका में प्रसिद्ध है, परन्तु उनकी जीवन विषयक अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। शेख महम्मद बाबा के बारे में तीन मत हैं। एक मत के अनुसार वह श्रीगदा में अवतोग हुए। दूसरे मतानुसार वह मूल रुईवाहिरे के रहनवाल थे और तीसरे मतानुसार घाहल के थे। इस मत का उल्लेख स्वयं शेख महम्मद बाबा ने अपने मराठी जन्म में किया है। घाहल में शेख महम्मद बाबा का जन्म ई० स० 1565 के लगभग हुआ था। इनके पिता का नाम राजे महम्मद तथा माता का नाम पूर्णेशा था। दाना पति पत्नी अत्यन्त धर्मपरायण थे। राजे महम्मद सूफी पंथीय कादरी परम्परा के थे। राजे महम्मद की कादरी आलिया की परम्परा में बड़ी प्रसिद्धी थी। वह निजामशाही में बड़े पद पर थे। वह मूल घारी वंश के थे। वह घाहल क्षेत्र के हवलदार थे। वह खुदलापुर या खुरानापुर के थे। चंद्रभट बाबल राजे महम्मद के मांसिद्ध में बड़े हुए। राजे महम्मद पहले घाहल, बाद में देवगिरी, दीनताबाद, उफ औरगावाद में रहे। हिंदू मुसलमान दोनों ही इनके अनुयायी थे।

शेख महम्मद इस्नामधर्मी थे। उन्होंने अपने धर्म को निष्ठापूर्वक आखिरी दम तक निभाया। वह गृहस्थाश्रमी थे। गृहस्थ का काय सुचारु रूप से निभाते हुए अध्यात्म साधना की ओर अग्रसर हुए। उन्होंने अपने पिताजी के शिष्य चाद बाबल के पास ही पठन-पाठन तथा योगाभ्यास किया। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारंभ के 25-30 वर्ष तक शेख महम्मद बाबा अपने गुरु चाद बाबल के पास ही रहे होंगे। उमर बाद शेख महम्मद बाबा की मन्त्र प्रसिद्धि हुई। आगे चलकर महाराष्ट्र के छत्रपति शिवाजी महाराज के दादा मालाजीराव भामले तथा उनके दीवान कोहेरपत का पंगिचय हुआ। वह शेख महम्मद बाबा से प्रभावित हुए और बाबा का अहमदनगर जिले के आज के थोगोडा तहसील के गांव में लगे। यहाँ मकरदपुरखेड में उनका स्थायी निवास बना। ई० स० 1596 में उन्हें एक गुफा बनाने दी। उसी में शेख महम्मद अपनी योग-साधना करते रहे।

पिता राजे महम्मद की तरह पौत्र महम्मद गृहस्थाश्रमी थे। श्रीगदा में उनकी वंश के पास ही उनकी पत्नी की कब्र है। शेख महम्मद का वंश अभी भी है। उनसे

वश के लागी कब्रों आज श्रीगोदा में हैं। शेख महम्मद बाबा के परिवार का पालन करन के लिए मालाजोराब ने कुछ जमीन दान की थी। आज भी उनका वश के पास बड़े जमीन हैं। शेख महम्मद बाबा ने किम वष में समाधि ली, इसका ठीक से पता नहीं चलता। कहा जाता है कि बाबा न समाधि गुफा में ली और उसके बड़े बरों बाद गुफा पर दरगाह बनाया गया। शेख महम्मद बाबा के शिष्या में हिन्दू-मुसलमान दोनों ही थे।

शेख महम्मद बाबा के घर में शिवराम सीताराम बालगें योगसग्राम ग्रंथ की भूमिका में लिखते हैं कि वह रईवाहारे के रहने वाले थे और कमाई थे। बकर बाटने का काम करते थे। इसी काम में उन्हें बिरकिन हुई। यही मत प्राचीन सत चरित्रकार महिपति बाबा तथा आधुनिक सत चरित्रकार दासगणु का है, परन्तु इस मत का ऐतिहासिक प्रमाण कुछ भी नहीं है।

श्रीबालगें न दूसरी कथा इस प्रकार दी है। आलमगीर बादशाह के समय जजरन बेगार डानी पड़ती थी। जब शेख महम्मद बाबा के घर पर बेगार का बोझ लादा गया तो बोझ उतारे बिर के ऊपर मवा हाथ ऊँचा रहा। यह अलौकिक चमत्कार देखकर बादशाह न जान लिया कि यह कोई मिद्ध, माधु, फकीर-औलिया है। अब आलमगीर न उनके लिए व्यवस्था की। श्रीगोदा में मठ बनाकर शेख महम्मद बाबा रहने लगे। इनके गुरु का नाम चाद बाबले था। शेख महम्मद के समकालीन सत प्रह्लाद बाबा, राऊन बाबा, आदि थे। शेख महम्मद बाबा गृहस्थाश्रमी उनकी समाधि की पूजा एक तरफ से हिन्दू तो दूसरी ओर से मुसलमान करते हैं।

श्री दासगणु न अपने एक आश्रयान में शेख महम्मद बाबा का जन्म कमाई कुन में बताया है और खड्ड वन में योगसाधना करने की चर्चा की है। चाद बोधले न गावावरी के बिनार सत गानेश्वरी जो का ग्रंथ 'गानेश्वरी' का दान देने की बात कती है। रगु नाम की बीमार बुढ़िया का ज्ञानेश्वरी सुनकर अच्छा होने की भी चर्चा है।

शेख महम्मद बाबा ने अपनी योगसाधना गुडेगाव के तालाब पर की थी, ऐसा उल्लेख मिलता है। श्रीगोदा निवासिया का कहना है कि श्रीगोदा से एक मील दूर एक बड़े पत्थर पर शेख महम्मद बाबा, सत तुकारामजी श्री गादड बाबा, प्रह्लाद-बाबा, राऊन बाबा आदि सत इकट्ठा होकर परमाथ विषयक चर्चा करते थे।

शेख महम्मद बाबा न अपने योग सग्राम ग्रंथ में अपने जीवन का एक प्रसंग दिया है जा इस प्रकार है — एक दिन इतवार का राज था। शेख महम्मद बाबा नदी

हमारे मुस्लिम सत कवि (सरम्बती) के किनार बठनर ईश्वर की उपासना कर रहे थे। इतने में एक सपने में तबक उन्हें तीन बार डम लिया। सपने बहुत ही जहरीला था। उसी समय शेष महम्मद बाबा न अद्वत बोध क द्वारा सदगुर की अराधना की। गुरु की कृपा से उन्हें विष का जमर बिल्कुल नहीं हुआ।

महिपति बाबा ने अपने भक्ति विषय' गद्य में शेष महम्मद बाबा के जीवन का प्रसंग इस प्रकार दिया है—एक दिन शेष महम्मद बाबा श्रीगोदा में अपने मठ में कीर्तन कर रहे थे। हजारों श्रोता बड़ी लगन से कीर्तन सुन रहे थे कि कीर्तन करते करते बाबा न एकदम छलाग मारी। लोग देखते रहे गये। बाबा क हाथ क्षणभर में काल हो गए जस कि कोई जला हुआ कपडा हाथ से मसल डाला हा। उपस्थित साग ने पूछा—बाबा! यह क्या बात है? शेष महम्मद बाबा ने बताया कि अभी देह नगर में सत तुकारामजी महाराज का कीर्तन चल रहा है। कीर्तन में श्रोता लाग मत्तमुग्ध हो गए हैं। मशालची भी इतना मस्त हुआ कि उसे कोई भान भी नहीं रहा और भजन के आनन्द में मभी लोगों के साथ उसने भी अपना हाथ ऊपर लिया। मशाल मडप को लगी और लगते ही मडप जलने लगा। यह सब मैंने यहां से देखा और मन में आया कि कीर्तन क रग से भग न हा, इसनिए तुरत आग बुझा दी।

एक श्रावण ने कहा—बाबा! क्या तो बिट्ठल भगवान के सामने ही हो रही होगी ना? फिर भवन बत्सन भगवान को क्या अपने भक्त की बिट्ठल ही चिंता नहीं थी?

इस पर शेष महम्मद बाबा ने कहा—भगवान तो क्या में ही उपस्थित थे, परंतु वे भी अपना देवत्व भूल गये थे। ऐसी अवस्था में रग का भग न हो इसलिए मैंने ऐसा किया।

जनता को बाबा की इस बात पर निश्वास नहीं हुआ। हर एक आदमी मन में यही सोचना रहा कि देह यहां से कोई नज्दीक तो नहीं है और बाबा ता हमारे सामने हैं, फिर बहा की आग बुझाने का काम यहां से कैसे हो सकता है। यह तो निरग्न भ्रम है। आखिर इस भ्रम का निणय करन की दृष्टि से बाबा न कहा—आप इस बात की तलाश करके सही जानकारी प्राप्त करो। फिर क्या था। उसी समय पत्र देकर एक घुडमवार ट्रेडू के पटले के पास भेजा गया। घुडमवार केवल बारह घंटे में 80-90 मील जाकर वापस आ गया।

शेख महम्मद बाबा की बात बिल्कुल सही निकली।

श्रीगोदा के मठ में शेख महम्मद बाबा का एक चरित्र है। इस चरित्र के कर्ता शेख महम्मद बाबा के एक ही शिष्य हैं। यह चरित्र कब लिखा गया, इसका कोई उल्लेख नहीं। इस चरित्र में लिखा हुआ है कि शेख महम्मद कबीर का अवतार है। श्रीगोदा के मकरदपुरपेठ में शेख महम्मद का अवतार हुआ है। वह अखंड समाधि की अवस्था में रहते हैं। भुख से नाम सुमिरन करते हैं। राज महम्मद पिता पुव्हलेसा माता (पतिप्रता) के पेट से शेख महम्मद का अवतार हुआ है। उनकी अवतार-लीला का बणन साधु-सती ने किया है। उस काल के प्रधान सत तुकाराम, रामदास और जयराम स्वामी का शेख महम्मद बाबा पर बड़ा प्रेम था।

शेख महम्मद बाबा न प्रथम 'योगसग्राम' नामक ग्रंथ लिखा। यह ग्रंथ तैयार होते ही इसे अपने दा शिष्या के माथ काशी भेज दिया। वहाँ जनता न बड़े भक्तिभाव से ग्रंथ की वदना की। वेदशास्त्र सम्पन्न ब्राह्मणों को अपने पर बड़ा अभिमान था और मन में मुगलमानों के प्रति घृणा थी। ग्रंथ को देखते ही उन्होंने कहा कि यहाँ तो एक मुगलमान द्वारा लिखा हुआ है। इस ग्रंथ का कौन पढ़ेगा? पढ़ना तो अलग, इसे देखना भी पाप है। इस तरह की घणात्मक भावना से प्रेरित होकर कुछ ब्राह्मणों ने ग्रंथ को गंगा की पावन धारा में विसर्जन कर दिया। ब्राह्मणों का तो इस कृत्य से आनन्द हुआ, पर अग्रिकाश जनता को अपार दुःख हुआ।

शेख महम्मद बाबा को भी इस बात का पता चला। उन्होंने अपने शिष्या को एक लपेटा लेकर ग्रंथ वापस लाने के लिए कहा। शिष्य ब्राह्मणों के पास गये और ग्रंथ वापस देने का अनुरोध किया। इस पर एक ब्राह्मण गंगा पर गया। उसने देखा कि ग्रंथ को पानी का स्पर्श भी नहीं हुआ है। इस बात से सभी ब्राह्मणों को आश्चर्य हुआ। उनका अभिमान समाप्त हो गया। तब सभी ब्राह्मणों ने शेख महम्मद बाबा के 'योगसग्राम ग्रंथ' की वदना की। यह ग्रंथ काशी में सर्वमान्य हुआ। काशी से 'योगसग्राम ग्रंथ' को लेकर ब्राह्मण श्रीगोदा पहुँचे और वहाँ शेख महम्मद बाबा का दर्शन तथा सत्संग किया।

एक दिन काशी के ब्राह्मणों ने महाराष्ट्र के परिमर में रहने वाले सत-महात्माओं से मिलने की इच्छा व्यक्त की। शेख महम्मद बाबा ने कहा कि देहु में सत तुकारामजी रहते हैं। बडगाव में जयराम स्वामी हैं। ये दोनों महान सत हैं। जाय इनका दर्शन करिए। पहले ब्राह्मण बडगाव गये। ममथ शिष्य जयराम स्वामी

हमारे मुस्लिम सत कवि

का राजसी ठाटवाट देखकर ब्राह्मणा के आश्चय की सीमा नहीं रही। जयराम स्वामी के पास राजा—महाराजाओं से कम ऐश्वय नहीं था। हाथी पर नौवतखाना था। घाडे, ऊट, गायें आदि असंख्य पशु थे। साथ में सवादार तथा पाच मी शिष्य थे। जिन समय ब्राह्मण वहाँ पहुँचे तो जयराम स्वामी का कीतन चल रहा था। कीतन में ब्राह्मणा ने उस्थित जनों का नमस्कार किया। जयराम स्वामी को इस बात का आश्चय हुआ। उन्होंने ब्राह्मणा से कहा कि आप ब्राह्मण हाकर सभी को नमस्कार करते हो यहाँ कहाँ की नई रीति आपने चलाई? तब ब्राह्मणा ने कहा, श्रीगोदा में एक सत है। नाम है शेख महम्मद बाबा। प्राणी मात्र को भगवद स्वरूप समझकर नमस्कार करने को उनकी रीति है। वही रीति आज हमने आपने दरवार में अपनाई है। इन पर जयराम स्वामी ने कहा कि वह तो जाति से मुसलमान है उसकी बात आप मुझे बता रहे हो।

बाद में जयराम स्वामी स्वयं अपने शिष्यों के साथ शेख महम्मद बाबा को देखने श्रीगंगा गये। मकरद पेट में गुफा के पास देखा तो वहाँ शेख महम्मद बाबा नहीं थे। बाबा को खोजते खोजते जयराम स्वामी सरस्वती नदी के किनारे आये। शेख महम्मद बाबा पाक में नाल लगा हुआ जूता पहनकर खड़े थे। जयराम स्वामी ने शेख महम्मद बाबा से पूछा—शेख वहाँ है? तब बाबा ने कहा—वह तो जाम के पेट के नीचे बैठा है। जयराम स्वामी ने जाकर देखा तो वहाँ एक भयानक शेर बैठा था। शेर को देखकर जयराम स्वामी वापस लौटे और फिर शेख महम्मद बाबा से पूछा—हम शेर के पास क्यों भेजा? तब बाबा ने हसकर कहा—वही तो शेख महम्मद है। उसी समय जयराम स्वामी ने शेर को जालिगन में भर लिया। शेर का परिवतन शेख महम्मद बाबा में हुआ। कुछ समय तक बातचीत होने पर शेख महम्मद बाबा ने जयराम स्वामी का कहा—भात तैयार है। आप जल्दी से स्नानसध्या करिये। भोजन समाप्त होने पर सध्या समय दोना सता की आभ्यात्मिक विषय पर चर्चा हुई। बाद में शेख महम्मद बाबा ने सीना चीरकर जनेऊ निनालकर दिखाया और कहा हम भी मूल के ब्राह्मण ही हैं परंतु हमें जन्म इस कुल में लेना पया। बाद में सिर पर का शिवलिंग दिखा दिया। जयराम स्वामी ने मन में शेख महम्मद बाबा के प्रति बड़ी श्रद्धा हुई। मन में खुशी भी हुई। विदा होते समय जयराम स्वामी को शेख महम्मद बाबा ने कहा—आपकी आयु केवल पाच वष वानी है और हमारी 211 वष। इन पर जयराम स्वामी ने आग्रहपूर्वक निमतण दिया—मेरी ममाधि के समय आप ज्ञान की कृपा करें।

डाई वष के पश्चात जयराम स्वामी का समाधि का दिन आया। बडगाव मे जयराम स्वामी ने 5 सितम्बर 1672 को समाधि ली। समाधि महोत्सव के अवसर पर सत तुकाराम जी तथा बहुत से सत पधारे थे। अपार जनसमुदाय उपस्थित हुआ था। जयराम शेख महम्मद बाबा की राह देख रहे थे। भडारे का समय हुआ। सत तुकाराम जी ने भोजन परोमने के लिए कहा। सत तुकाराम जी के पास ही शेख महम्मद बाबा के लिए पात्र पगोसा। जनता की दृष्टि से पात्र पर कोई बंठा हुआ नजर नहीं आता था परन्तु गुप्त रूप से शेख महम्मद बाबा भोजन के लिए उपस्थित हो गये थे। इस बात को केवल सत तुकारामजी ही जानते थे। सत तुकारामजी ने सभी को भोजन की आज्ञा दी। भोजन करने वाला व्यक्ति नजर नहीं आता था, परन्तु पात्र का भोजन समाप्त हो रहा था। भोजन के बाद सत तुकाराम जी ने जयराम स्वामी से कहा—आज तुम्हारा सौभाग्य है। शेख महम्मद बाबा अभी अभी भोजन करके गये हैं। जब वह कीतन के समय आने वाले हं। कुछ देर बाद जयराम स्वामी का कीतन शुरू हुआ। कीतन में काफी भीड़ थी। बंठने के लिए जगह तक नहीं थी। जयराम स्वामी की पोथी उठाकर शेख महम्मद बाबा वहीं बंठ गये। कुछ नासमझ लोग न बहा कि यह आदमी तो पाव में जूते पहनकर बंठा है। कीतन में गडबडी होने लगी। सत तुकाराम जी। सभी को शांत किया। जयराम स्वामी को शेख महम्मद बाबा के आगमन के बारे में सूचित किया। जयराम स्वामी ने शेख महम्मद बाबा को नमस्कार किया। बडगाव मे जयराम स्वामी ने समाधि ली।

शेख महम्मद बाबा के कविता संग्रह के दो भाग महाराष्ट्र के प्रसिद्ध इतिहास सशोधक वासुदेव सीताराम बेद्रे ने प्रकाशित किए हैं। प्रथम भाग में योग संग्राम ग्रन्थ तथा दूसरे भाग में निष्कलक प्रबोध, पवन विजय, तत्त्वसार कालान्त गायत्रा, मदालसा, भक्तिबोध, आचार बोध, रूपके और मराठी हिंदी कविता है।

शेख महम्मद बाबा ने फारगुन सुदी नवमी को समाधि ली। आज भी हर वर्ष श्री गोदा म द्म दिन मला लगता है। शेख महम्मद बाबा ने मोना, कुरान का अच्छी तरह से अध्ययन किया था। इनके साहित्य पर दाना ग्रन्थ के वचना का प्रभाव दिखायी पडता है। हिंदू मुसलमान धर्मों के प्रति शेख महम्मद बाबा का सम भाव था, इसलिए दोना धर्मों के लोग बाबा के अनुयायी थे।

शेख महम्मद बाबा के एक हिंदी वाणी का नमूना अगले पृष्ठ पर दलिये —

अल्ला का हू बिसारा अभिमानी, पत्तेपल घटे उमर तेरी ज्यानी ।
 पहाड़ पर घन बरसे, पाछे कछुना रहे पानी ॥
 तेंसी तेरो उमर जाती हाथ, धीरे ना रहे तरे ज्यानी ।
 कागज गोरे आय बीच, ताहीं कछु न रहे निशानी ॥
 तसा एक दिन गन जायेगा, अकल होयगी तरी लिशानी ।
 पानी बीच मछी नै खुशी मानी, पानी गवा मछी भई ॥
 तसा बहत आयेंगा, बदगी कर तू घनी ।
 तन, धन, अँलाब, सब होयगा फनाफनी ॥
 बुनिया हिरोस देखे ते, तू बहुत खुशी मानी ।
 आखर बहत तुजे कौन छुआयेगा, तू हरदम याद कर घनी ॥
 बराग नसीहत मुन लौंको, मत करो घुम गोपत मनी ।
 कहत शेख महम्मद अल्ला के, बद के बीना साची नहे रहनी ॥

ताज

भगवान श्रीकृष्ण की वासुरी का स्वर कितना मीठा था। उसके स्वर में कितनी मादकता थी। इस स्वर ने अपना जादू मारे भक्ता पर डाल दिया था और इसकी मादकता में सारा ब्रज मडल, गाप गापी पावन हो गये थे। उसकी अमरता, उमका स्थायित्व कृष्ण के नाम के साथ ही प्रकृति और आकाश के पटल पर अंकित हो उठा है। प्रकृति का रगमच खडहर की भांति भले ही भयानक हो जाये, परन्तु भगवान श्रीकृष्ण की बसी बजती ही रहेगी। उसे न तो प्रलय मिटा सकती है, न ससार की कोई अय शक्ति। वह अमर है।

भक्तजन आज भी ब्रज की गोपियों की तरह श्रीकृष्ण के नाम पर नाचते हैं। करताल, वीणा, ढोल, मृदंग, मजोरे बजा-बजाकर उमादिनी बसी तथा बसीधर की कीर्ति में मगीत अलापते हैं।

इस विषय में प्रेम दोबानी मीरा का नाम तो हमारे सामने है ही परन्तु मीरा की भांति अनेक सता ने जगला में भटन भटक कर विरह का राग जलाया है। ताज इसी श्रेणी की भक्तिन हुई है। मीरा हिंदू थी ताज मुसलमान। इमाम मुसलमान होने पर भी अपने को भगवान श्रीकृष्ण के प्रेम में मिटा दिया। योगिनी का रूप धारण कर जिस समय ताज भगवान् श्रीकृष्ण के प्रेम में नान करने लगी थी, ता लोग वह उठते थे कि ताज पगली हो गई। उन्हें क्या मालूम था कि ताज के इस पागलपन में भक्ति का कितना रहस्य छपा हुआ है ?

नद के कुमार, कुरवान तेरी सूरत प ।

ह तो मुगलानी, हिंदूआनी ही रहगो में ॥

ताज कौन थी ? उसका जन्म कहा हुआ ? इनके माता पिता का क्या नाम था ? इसकी अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं। वैसे तो इनका सारा जीवन ही सामान्य जनता की दृष्टि से अंधकारमय रहा। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है। इनका जन्म सन् 1700 के लगभग माना जाता है। यह मुसलमान पत्रपित्री पड़ोनी ग्राम में पैदा हुई। इनके पदों की भाषा से पता चलता

है कि वह पचास प्रात की रहने वाली थी। वह कृष्ण प्रेम की दीवानी थी। कृष्ण से प्रेम हो जान पर कविता की धार उनका ध्यान गया। ताज मीरा की भाति गिरधर गोपाल के वियोग में राग अलापा करती थी। हृदय से ताज परम वैष्णव कवयित्री और महाभगवत भक्त थी। वह ठाकुर जी की कृपा से कवयित्री हुईं थीं। उनकी सारी कविता कृष्णभक्त के रंग में रगी है।

ताज रोजाना स्नान कर भगवान् के मंदिर में दशन करने जाती थी और भगवत दशन के बाद भोजन ग्रहण करती थी। एक दिन वैष्णवां ने उसे मुसलमान विधामिनी समझकर मंदिर में ठाकुरजी का दशन करने से रोक दिया। ताज बड़ी दुःखी हुई। उसने जल त्याग दिया और वह मंदिर के प्राण में बठी रही। भगवान् कृष्ण के नाम का जप करती रही। जब रात हुई और सारा गांव सुनसान हुआ तो स्वयं ठाकुरजी मनुष्य के रूप में भोजन का थाल लेकर ताज के पास आये। कहने लगे—तू आज थोड़ा भी भोजन नहीं किया है। प्रसाद खा ले। ताज ने भक्तवत्सल भगवान के हाथ का प्रसाद ग्रहण किया। भगवान ने ताज से कहा कि कल प्रात काल जब सभी वैष्णव मंदिर में आयें तो उनसे कहना कि तुम लोगो ने कल मुझे ठाकुरजी का प्रसाद और दशन का सौभाग्य नहीं दिया। इससे आज रात को ठाकुरजी स्वयं मुझे प्रसाद दे गये हैं और तुम लोगो को सदेव कह गये हैं कि ताज को परम वैष्णव समझो। इसको दशन और प्रसाद ग्रहण करने में रूकावट मत डालो। नहीं तो ठाकुरजी तुम लोगो से नाराज हो जायेंगे।

प्रातकाल जब सब वैष्णव आये, तो ताज ने सारी बातें उनसे कह सुनाई। ताज के सामने भोजन का थाल रखा देखकर वे अत्यन्त चकित हुए। वे सभी वैष्णव ताज के चरणों पर गिर पड़े। सभी क्षमा प्रार्थना करने लगे। तब से ताज प्रतिदिन भगवान का दशन करके प्रसाद ग्रहण करने लगी। पहले ताज मंदिर में जाकर ठाकुरजी का दशन कर आती थी, तब सारे वैष्णव दशन करने जाते थे। हम यहाँ पर उनकी कुछ भक्तिपूर्ण कविताओं को उद्धृत कर रहे हैं —

(1)

धूल जो छबीला, सब रंग में रगीला, बडा ।
 चित्र का अड़ीला, कहूँ देवतो से यारा ह ॥
 माल गले सोह, नाक मोती सेत जो ह, कान ।
 कुडल मन मोह, लाल मुकुट सिर धरा ह ॥
 बुष्ट जन मारे, सब सत जो उबारे, 'ताज' ।
 चित्त में निहारे प्रत, प्रीति करनवारा ह ॥
 नदजू का प्यारा, जिन कस को पछारा, वह ।
 वृंदावनवारा, कृष्ण साहेब हमारा ह ॥

(2)

मुनो दिलजानी, मेरे दिल की कहानी तुम ।
 दस्त ही विकानी, बदनामी भी सहगी म ॥
 देवपूजा ठानी म, निवाजहूँ भुलानी, तजे ।
 कलमा कुरान साड़े, गुननि गहूगी म ॥
 सावला सलोना सिरताज, सिर कुल्ले दिय, ।
 तरे नेह दाग में, निदाघ हूँ बहूगी म ॥
 नद के कुमार, कुरवान तेरी सुरत प, ।
 हूँ तो मुगजानी, हिंदूजानी ही रहूगी म ॥

(3)

साहब सिरताज हुआ, नदजू का आप पूत ।
 भार जिन असुर करो, काली सिर छाप ह ॥
 कुदतपुर जायके, सहाय करो भीषम की ।
 रुक्मिणी की टक राखी, लगी नहीं छाप ह ॥
 पाडव की पच्छ करो, द्रौपदी बड़ाय चीर ।
 दोन से मुदामा की, मेटी जिन ताप ह ॥
 निहच करि सीधि लेहूँ, ज्ञानी गुतवान बेगि ।
 जग में जनूप मिन, कृष्ण का मिलाप ह ॥

(4)

पालिवी के तोर नीर, निकट बदम्ब कुज ।
 मन कुछ ईच्छा कीनी, सेज सरोजन की ॥
 अतर के धामी कामी, कवल के दल लेवें ।
 रची सेज तहां शोभा, कहा कही तिनकी ॥
 तिहि सम 'ताज' प्रभु, दम्पति मिले की छवि ।
 धरन सकत कीऊ, नाहीं बाहि छिनकी ॥
 राघ की चटक देख, अलिया अटक रही ।
 मीन की मटक नाहि, साजत वा दिन की ॥

(5)

कोऊ जन सेव शाह, राजा राव ठाकुर की ।
 कोऊ जन सेव मरो, भूप काज सारह ॥
 कोऊ जन सेव देवी, चडिका प्रचड ही करें ।
 कोऊ जन सेव ताज, मनपति सिरभारह ॥
 कोऊ जन सेव प्रेत, भूत भवसागर की ।
 कोऊ जन सेव जग, कहू वार वारह ॥
 काहू के ईस विधि, सकर को नेम बड़ो ।
 भेरे तो अघार एह, नन्द के कुमारह ॥

कारे बेग

भगवान को भक्तों ने प्रेम से बड़ा किया है। भगवान प्रेम का भूषा है। जो उस सच्चे मन से चाहता है, वह उसी का हुआ जाता है। भगवत प्रेम में जाति-पाति, धर्म-संप्रदाय, विद्या-वृद्धि, धन ऐश्वर्य आदि की कोई महत्ता नहीं है। स्त्री हो चाहे पुरुष, हिंदू हो चाहे मुसलमान, ईसाई हो चाहे पारसी, पंडित हो चाहे मूर्ख, राजा हो चाहे रक्ष, ब्राह्मण हो चाहे चाण्डाल, जो उस परम पिता परमात्मा को प्रेम से भजता है, वही उसे पाता है। कारे बेग भी अनन्य श्रीकृष्ण भक्त-सत और साधक थे। इनके जीवन का परिचय हिंदी जगत को नहीं है, पर राष्ट्रभाषा हिंदी के क्रमिक विकास का अनुशीलन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिंदी को राजभाषा योग्य बनाने, उसके सवारने और संज्ञान में प्रत्येक धर्म ने अपना अनमोल योगदान दिया है।

भक्त सुकवि कारे बेग ललितपुर (झांसी) के निवासी थे। जाति से वह रंगरेज मुसलमान थे। इनका जन्म सन् 1700 वि० के आसपास हुआ था। ललितपुर की बजरिया में वह नीम के जिस पड के नीचे बैठकर कपड़े रंगते थे अपना रोजगार किया करते थे, वह जगह आज भी बताई जाती है।

भक्त जब उच्च अवस्था में परिणत हो जाता है, तब उसकी उपासना विश्व सीमा तक निरिद्धि प्राप्त करती है, उसका सुंदर उदाहरण कारे बेग के जीवन से प्राप्त होता है। कहा जाता है कि एक बार कारे बेग के प्रीकृत पुत्र की अस्वामियन मृत्यु हो गई। कारे बेग ने पुत्र के शव को भगवान श्रीकृष्ण की मूर्ति के पास लिटा दिया और भक्तिभाव से प्रार्थना करने लगे। उन्होंने सौ कवित्त कहे। पर जब उनका प्रभाव नहीं हुआ, तब उन्होंने आठ कवित्त और पढ़े। अंतिम कवित्त की समाप्ति पर पुत्र जीवित हो उठा। साधक की साधना सफल हुई, वाक्यवत्ता साधक हो उठी। इस चमत्कार ने कारे बेग को स्थायी प्रसिद्धि प्राप्त करा दी।

कारे बेग ने सुंदर कविताओं की रचना की है। उ होने एक कवित्त में अपने गुरुदव स वित्त की है—

एहो ब-देल खड वार वार साड डारो, हरो पोर रामदेव, ऐसी गुरु जानी नहीं।

इससे यही प्रतीत होता है कि उनके गुरु रामदेव थे। इग विषय पर अभी अनुसंधान की आवश्यकता है। उनके एक कवित्त का अर्थ इस प्रकार है—

सत्तरह सौ सत्तरह षवि सारे कवित्त कीहो।

नैनन म नैबहू हरिदासन की ठानी नहीं ॥

सिद्धहस्त गुलेपक ओरछेडा कारे बेग की सुंदर तथा भावपूर्ण रचनाओं स बहुत प्रभावित हुए। सम्बत् 1894-95 वि० म जैरोन (टीकमगढ) व कुछ मुसलमानों न जमादार विमाना की जमीन पर पहल एक चबूतरा बनवाया। फिर यहा पर मस्जिद बनान लगे। जमीनार कित्तानों ने चबूतरा तोड दिया। आखिर मुसलमाना न ओरछेडा की सेवा म आवेदन पत्र भेज दिया। आवेदन पत्र का जेख हिंदी भाषी था और छेडा उस पढ़कर बडे ही प्रभावित हुए। आवेदको न कारे बेग की निम्न पक्ति अंत में तिव दी थी—

हिन्दुन के नाथ तो हमारा कुछ दावा नहीं।

जगन के नाथ तो हमारी सुघ लीजिये ॥

इस पक्ति म ओरछेडा प्रवित्त हा गये ओर उ होने जाज्ञा दी की मस्जिद वही बनगी। जमादार को उस भूमि के बदल में राज्य की कई गुना भूमि द दी। उनका कहना था कि भाय म उदार दृष्टिकोण होना चाहिये।

कारे बेग के कवित्त करीबन एक शताब्दी स जनता में प्रसारित हैं। लाग प्रेम म गाते जीग सुनते हैं। जनगाधारण में प्रचलित अय कवित्त भी यदि सप्रहित होकर प्रकाश म आ सके ता यह एक महत्वपूर्ण काय होगा।

(1)

दूधत उबारो ब्रज, मारो मान मधवा की ।
 कहत कवि कारे, जैसे, आन गिर भार की ॥
 पक्षिन के पक्ष तुम, निपक्षन के पूरे पक्ष ।
 तुच्छन को पच्छ धीनो, न करी फेरफार की, ।
 तुम ही सहाय मेरे, और नहीं दूजा प्रभु ।
 रहे कार सार बलि, जाउ अवतार की ॥
 एहों रनधीर बलभद्री के, धीर अब ।
 हरो मेरी पीर क्या, हमारी बेर बार की ॥
 माफ किया मुलक, मताह दे विभीषण को ।
 कीनी जवान, कुरवान बेकरार की ॥
 बठन के ताहीं तू, बखत देख तखत भेजा ।
 दीलत बढ़ाई तू, जुनारदार यार की ॥
 उनी क्या निमाज पढी, जब तुमसे राज हुआ ।
 खबर करी जब ही जब, चिडी ही मार की ॥
 बदे की बदगी, विचार कवि कारे कह ।
 बकामुन बिनाशन क्या, हारी बेर बार की ॥

(2)

तेरो तो जिगर में, फिर मन मेरा हुआ ।
 दे दे दुआ तो सौ, तो जरज बार बार की ॥
 कीजिए मिहिर मीपे, तूजिए मिहरयान ।
 मुनिए सुजान गुसा, छोड बार बार की ॥
 तू साहब हूँ मेरा, म आद नफर तेरा ।
 त खबरदार मेरा, त खबर बार-बार की ॥
 औरन की बेर फो, न बेर करनी कारे कह ।
 नद के कुमार क्या, हमारी बेर बार की ॥

(3)

मुस्कि क सफी क बदल, दोस्त तू रफी क मेरा ।
 तू ही नजदीकी ह, हकीकी खयाल कीजिए ॥
 वन्दे की अरज दस्त, बस्ताये गरज अटकी ।
 मेरी ओर देख जरा, अब तो दरस दीजिए ॥
 'कारे' का करार पड़ा, तरे दरम्यान हार ।
 अब चाह दीदार, बेमुरव्वत न हूजिए ॥
 हिडुन के नाथ तो, हमारा कुछ दावा नहीं ।
 जगत के नाथ तो, हमारी सुध लीजिए ॥

(4)

छलबल के छाक्यो, अनेक गजराज भारी ।
 भयो बलहीन जब, नक न छुडा गयी ॥
 वहिब को भयो करुना, की कवि कारे कह ।
 रही नेक नाक और, सब ही गुवा गयी ॥
 पकुज से पायन, पयादे पलग छाडि ।
 पावडो विसारि प्रभु, ऐसे पोरे पा गयी ॥
 हाथो के ह दय माहि, आयो हरिनाम सोय ।
 गरे लो जो आयो, गुरुवेश तो ली आ गयी ॥

जमाल शाह

महाराष्ट्र के सत-कवियों की सूची में तो केवल इतना ही लिखा है कि इनका मूल नाम विश्वानाथ था। इनके जन्म तथा मृत्यु के बारे में कुछ भी जानकारी उपलब्ध नहीं है। कहा जाता है कि जब वह अधिक अस्वस्थ होने पर गंगा में प्राण समर्पण कर रहे थे तभी इन्हें भगवान् दत्तात्रेय का मलग वेश में दर्शन हुआ, वही स इन्होंने फकीरी अपना ली और फकीर वेप धारण किया।

जमाल शाह के पदों में निवृत्तिपरक भाव है। इनका प्रादुर्भाव 16वीं और 17वीं शताब्दी के मध्य में हुआ होगा, ऐसा विद्वानों का अनुमान है। समय बाम्देवता मंदिर के हस्तलिखित प्रयागार की पोथियों में इनके पद मिलते हैं। कुछ लोगों का अनुमान है कि वह समय रामदास स्वामी के अनुयायी थे। इनके मन्वन्ध में विज्ञेय और विस्तृत जानकारी का अभाव ही है, फिर भी इतना तो उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि वह अपने समय के उत्कृष्टतम सतों में से थे। हिन्दू और इस्लाम, दोनों धर्म दर्शना का प्रभाव और उनका प्रतिममान आदर-भाव इनके हृदय में था। इनकी रचनाओं में वैराग्यभाव परिलक्षित होता है। इनके फुटकर ५६ मिलते हैं। एक हिन्दी पद नीचे दिया जाता है—

दो दिन की गुजरान रे,
सगा साती कौन हमारा,
टिका मकान का न विस्तारा,
वस्ती के वरान रे ।
कौन किसी का कुटबकबीला,
कौन किसी का गुह व चेला,
नाहक ही हरान रे ।
नगा होकर आना जाना,
घडी घडी पल दिन को खोना,
आखर कु घुलधान रे ।

अलबेली अली

भक्त अलबेली अनी प्रेम की साक्षात् मूर्ति थे, उन पर भगवान की प्रेममयी कृपा की निरन्तर वृष्टि हाती रहती थी। प्रभु के दिय सुख और सतुष्टि ग ही वह अपना मंगल दखत थे। भगवान् के मंगलमय विधान में उनकी अडिग आस्था थी।

इनका जन्म अनुमानत विक्रमी सवत् अठारहवीं शताब्दी के आदि में हुआ था। अलबेली अली श्रीविष्णु स्वामी सम्प्रदाय में हुए हैं। भाषा के सुकवि होने के अतिरिक्त वह संस्कृत के भी अच्छे पंडित थे। इनका लिखा श्रीस्तोत्र एक सुंदर काव्य ग्रंथ है। उसका एक-एक श्लोक अत्यंत मनाहर है।

भगवान के भजन की अनन्य साधना और अनुपम प्रीति के कारण राम रस का पान करने वाला कुछ धिरेल हो सत हुए हैं। उनमें श्री अलबेली अली का नाम बड़े ही जादर से साथ लिया जाता है। भगवान् की सेवा में नित्यप्रति रहकर इन्होंने प्रभु को बहुत समीप से देखा और उनकी लीलाओं का जमतपान भी किया। अलबेली अली महात्मा श्रीवशी अली के कृपापात्र शिष्य थे। 'जुष्टमाय' के इनके कुछ पद बड़े ही सुंदर हैं—

नृत्यति नवल नवेली, पिय असनि भुग मेली ।

पिय असनि झुकि चलत मदगति, लेति सुल्य सुखदाई ॥

कुतल हलनि, चलनि कल कुडल, जुग मडनि छवि छाई ।

अधरनि झुलनि नकमोती, मनो करत रसकेली ॥

चचल चौप चपल चपला सी, नृत्यति नवल नवेली ।

शाह हुसेन फकीर

महाराष्ट्र के प्राचीन मत मडली में शाह हुसेन फकीर का नाम बड़े गौरव के साथ लिया जाता है । महाकवि मोरोपंत ने शाह हुसेन फकीर की वाणी की मुक्त बंध से प्रशंसा की है । इस सत कवि के मराठी गीत और कुछ हिंदी पद पाये जाते हैं । इस सत कवि का नाम उमकी रचना में शाह हुसेन फकीर, शाह फकीर, शाहू फकीर, हुसेन फकीर, आदि विभिन्न नाम पाये जाते हैं । इस सत कवि ने अपनी कविता में भगवान श्रीकृष्ण की लीला का वर्णन बहुत ही अच्छा किया है । इनके दो हिंदी पद इस प्रकार हैं —

(1)

कोई भिच्छा फकीरी लावणा,
हाजर होकर भेजणा,
तेरे कारण जोगण होऊंगी,
घर पर अलग जगावणा,
शाहसेन फकीरी आल्हडा,
बाहेर जगल बसावणा ।

(2)

तीरथ कौन करे ।
हमारी तीरथ कौन करे ॥ध०॥
मनमो गगा मनमो जमुना ।
मनमो ध्यान धरे ॥
मनमो मुद्रा, मनमो आसन ।
उमनि ध्यान धरे ॥
शाह हुसेन फकीर कहता ह ।
भटवत कौन फिरे ॥

जंगली फकीर सय्यद हुसैन

बुड्ढवाल सिद्ध नागनाथ को अपना गुरुदेव माननेवाला एक मुसलमान सत आलमखान जंगली फकीर सय्यद हुसैन है। 'जंगली फकीर' यह इस सत कवि का लोकप्रिय नाम है असली नाम सय्यद हुसैन ही है। इस सत कवि ने अपन काव्य में जंगली फकीर और सय्यद हुसैन ऐसे दोनों नामों का उल्लेख किया है। इन्होंने मुख्यतः पौराणिक कथा पर ही काव्य रचना की है। इनके साहित्य अधिकांश मराठी में हैं। धुलिया के समय वाग्देवता मंदिर में इन्का साहित्य उपलब्ध है। उनका हिन्दी पद इस प्रकार है -

कमजात बचा इल्म की, सीखा तो क्या हुआ।

घोड़े चढ़ा हाकिम, नामो हुआ तो क्या हुआ ॥

हिकमत सीखा लुकमानीसा, ज्ञाता हुआ तो क्या हुआ।

बेदा जु पढ़ता फरह, साहेब सखी मुख जदह ॥

गलता नहीं दिल सदह, फाजल हुआ तो क्या हुआ।

कातिब हुआ या खुश कलम, इंसान के दया न तन ॥

रहता नहीं साबूत मन, मुशी हुआ तो क्या हुआ।

आखिर कु पछतायगा, गैंग तमाचे लायगा ॥

दस्तम हुआ तो क्या हुआ, बस कर हुसनी बात कु।

मत ले उसे भी सात तु, लानत खुदा उस जात कु ॥

आया मिला तो क्या हुआ।

दरिया साहब

(विहारवाले)

जिन दिनों मारवाड़ पर दरिया साहब मौजूद थे, उन्हीं दिनों बिहार में भी एक दरिया साहब हुए थे। इनका जन्म प्रायः सन् 1731 में धरकधा (जिला शाहाबाद) नामक ग्राम में हुआ था। इनके धर्म के बारे में जनता में दो मत हैं। कोई मुसलमान मानते हैं, तो कोई इन्हें हिन्दू क्षत्रिय बतलाते हैं। दरिया भागर प्रथ के अंत में लिखा है —

भादो बदी चौथी वार सुक्र, गवन कियो छप लोक ।

जो जन शब्द विवेकिया, मेटेऊ सकल सब सोक ॥

सवत् अठारह सौ सतीस, भादो चौथो अधार ।

सवा जाम जब रनिगो, दरिया गोन बिचार ॥

दरिया साहब विक्रमी सवत् 1837 मिति भादो बदी 4 को परमधाम सिधारे। इस धरती पर वह 106 वर्ष रहे। दरिया साहब को श्रद्धालु जनता सत कबीर का अवतार मानती है। एक किंवदन्ती का अनुसार एक महीने की अवस्था में ईश्वर ने इन्हें माता की गोद में दशन दिए और दरिया नाम बरशा। नौ वर्ष की अवस्था में इनका विवाह हुआ। केवल 5 वर्ष की अवस्था में इनको वैराग्य प्राप्त हुआ। बीस वर्ष की उम्र में इनकी महिमा सन्न फल गयी। तीस वर्ष की अवस्था में सत्संग करना, उपदेश देना, मंत्र देना इन्होंने शुरू किया। इनके मत में वेद, भगुण अर्थात् अवतार स्वरूपों की पूजा, मूर्तिपूजा, तीर्थ, व्रत, नेम, आचार, जाति भेद इत्यादि का खंडन किया गया है। मद्य, मांस तथा हर तरह का नशा मना किया गया है। केवल निर्गुण और सतपुरुष को ही इन्होंने माना है। इसी कारण पंडितों ने इनका बड़ा विरोध किया। इस पथ के बहुत से रीति रिवाज मुसलमानी रीतियों से भिन्नते हैं।

● दरिया साहब जीवन भर धरकधा में रहे। यद्यपि थोड़े दिन के लिए काशी, मगहर (जि० बस्ती) वार्डसी (जि० गाजीपुर) हरदी व लहठान (जि० शाहाबाद) यात्रा और उपदेश देन के लिए गए थे। इनके 36 शिष्य हैं। जिनमें दलदासजी प्रधान थे। धरकधा में इस पथ का तख्त है।

दरिया साहब ने बहुत से ग्रंथ रच, 'जिनमें दरिया सागर' और 'ज्ञान दीपक' प्रधान हैं। अन्य ग्रंथ हैं — 'ज्ञान रत्न', 'ज्ञान मूल', 'ज्ञान स्वरोदय', 'निभय ज्ञान',

'अग्रज्ञान', विवेक सागर', 'ब्रह्मज्ञान', 'भक्ति हेत', 'अमर सार', 'प्रेम मूला', 'काल' चरित्र, 'मूर्त उखाड', 'दरिया नामा', 'गणेश गोष्ठी', 'रमेश गोष्ठी', 'बीजक' और 'सतमइया', इत्यादि। दरिया साहब पय के साधु जीर गहम्य विहार, तिरहुत, गोरखपुर, बलिया, और कटक म बहुत हैं।

पद

दरिया दिल दरियाव है, अगम अपार बेअत ।

सबमह मुम, मुम में सबे, जानि मरम कोई सत ॥

जगम जोगी सेवडा, पडे काल के हाय ।

कह दरिया सोई बाचि ह, जो सतनाम के साय ॥

पेड को पकड, तब डार पालो मिल ।

डार गहि पकड, नाहि पेड धारा ॥

देख दिव दष्टि, असमान में चंद्र ह ।

चंद्र को ज्योति, अनगिनित तारा ॥

आदि ओ अत सब, मध्य ह मूल में ।

मूल में फूल, धौ केति डारा ॥

नाम निलेप निर्गुन, निमल बर ।

एक से जनत, सब जगत सारा ॥

पडि बेद कितेब, विस्तार वक्ता कय ।

हारि बेचून वह नूर प्यारा ॥

नि पेच निर्वान, नि कम निभम वह ।

एक सबज्ञ, सत नाम प्यारा ॥

तजु नाम मनी करु, काम को बाधू यह ।

खोजु सतगुरु, भरपूर मूरा ॥

असमान क बूद, गरकाब हुआ ।

दरियाव की लहरी, कश्चि बहुरि मूरा ॥

शेख निसार

इनका जन्म ई० सन 1722 माना गया है। अवध के अतगत शेखपुर नामक कस्बा इनका जन्म स्थान है। कवि निसार ने कहा है 'शेखपुर' उनके पूर्वज शेख अबीबुल्ला ने बसाया था। वह देहली से अवध आये और बीस वर्ष तक वहीं रहे। शेख निसार के पुत्र का नाम गुलाम मुहम्मद था। वह प्रसिद्ध मौलाना रूप के वंशज थे। अरबी, फारसी, तुर्की और संस्कृत कई भाषाओं में कवि की गति थी। इन्होंने सात ग्रंथ लिखे हैं। इनका आखिरी ग्रंथ 'यूसुफ जुलेखा' है।

यूसुफ जुलेखा

आदि छंद

सुमिरी प्रथम स्वरूप सुहावा । आवि प्रेम निज तन उपजावा ॥
उत्पति प्रेम अग्नि उपजावा । विहुरि पवन अप्युव उपजावा ॥
आग्निसे पवन पवन ते पानी । पुनि पानी से खेह उडानी ॥
यहि सय ते उपज्यो ससारा । धरती सरग सूर ससि तारा ॥
चारि तत में सय फुछ साजा । पाचये सन् आकास विराजा ॥
मुनि रिच प्रथम दूत बिठाये । जगम अस्थखर उपजाए ।
प्रेम अग्नि तेहि काहू सभाश । रचा मनुष बहु विधि विस्तारा ॥
तेहि सौपा वह प्रेम कया ती । दीपक माह धरा जस बाती ॥
तेहि बाती महें आय छिपाए । होय परछिन पुनि बेह जराए ॥

नूर मुहम्मद

कवि नूरमुहम्मद जन्मा १८५५ ई. पू. में जिला मन्सूर में हुआ है। मन्सूर के
सब से म्भान का काई पता नहीं पता है। श्री बद्रमरी पंडे ने इस
म्भान का जौनपुर जिन में कागज म्भताया है। 'अनुराग बागुरी में इन्होंने
अपना उपनाम का म्भयाय लिखा है। 'इंदावती' और 'अनुराग बागुरी' के अतिरिक्त
नरमन कटानी' का अनुसार इनकी एक रचना 'नरमना भी है। यह
अंतिम मुगल शाह मुहम्मद शाह का म्भतायी है। अनेक म्भय का रचना कास
नूर मुहम्मद का म्भन् ११५७ हिजरी (सन् १८०१) में है। ५० रामचन्द्र मुक्ता
द्वारा लिखित हिन्दी साहित्य के इतिहास में कहा गया है कि इस म्भय (इंदावती)
को म्भो पंडित का अंतिम म्भय माना जाहिय।

इंदावती

स्तुति गद्य

धन्य थाय जग रिया हास। जिन म्भिन लम्भ अनास सवारा ॥
हो जग को आगुहि राजा। राज बोड जग की तोहि घाजा ॥
दोहा मन पय परिचारों। बोहा रतना साहि म्भलानों ॥
वात मुन यह सरपन दोहा। बोही म्भुडि जान तहि घोहा ॥
गन कि सोमा कीहे सितारा। घरती सोमा म्भनुय सवारा ॥

शेख नबी

आप जोधपुर जिले में दोसपुर के पास मऊ नामक स्थान में रहने वाले थे।
इन्होंने ज्ञानदीप जाख्यान काव्य लिखा है। कवि ने अपनी रचना 'ज्ञानदीप'
का निर्माण साल 1026 ई० दिया है।

अलवेमऊ दोसपुर धाना । जाउनपुर सरकार सुजाना ।
सहवां शेख नबी कवि कही । सबद अमर गुन दिगल रही ॥
—ज्ञानदीप ।

मुराद्दीन दिनपति, जहांगीर नितनेय ।
कुल दीपक बुति सकल की, साहेय साहि सलेम ॥
—ज्ञानदीप

एक हजार सन रहे छबोसा । राज्य सुसही गनहु घरीसा ॥
समत सौरह से धीहतरा । उकति गरत कीह अनुसार ॥
—ज्ञानदीप ।

मुल्ला वजहो

वह गोधरखोंडा के कुतुबशाही शासक र राजाधिन कयि थे । इनकी तीन रचनाएँ (1) कुतुब मुइतरी (2) ताजुल हयायक (3) सबरस मिलनी हैं । कुतुब मुइतरी क प्रारम्भ म कयि ने इब्राहिम कुतुबशाह (1550-1580 ई०) का स्मरण किया है ।

इब्राहिम कुतुबशाह राजाधिराज ।

सहशाह ह शाहशाही में धाज ॥

जिते पावशाही ह सतार के ।

भिनारी ह सय उतये दरवार के ॥

शेख अब्दुल कुद्दूस

इनका जन्म 1456 ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम शेख इस्माइल था। वह रुदौली के निवासी थे। शेख अब्दुल कुद्दूस बाराणसी से ही अल्फाट्ट के ध्यान में मग्न रहते थे। बाल्यकाल में उनके मन में यह इच्छा थी कि जंगल में जाकर तपस्या करे। एकवार वह बुरआन की शिक्षा ग्रहण कर रहे थे, तो दस-बारह दिनों तक इन्होंने जल का सेवन भी नहीं किया था। मस्जिद में पहुँचकर नमाज़ पढ़नवाले सभी भाइयों के जूते सीधे धरके रख देते थे। तब उन लोगों को जूता पहनने में सुविधा हो।

आपकी इच्छा विवाह करने की नहीं थी, किन्तु कुछ परिस्थितियों के कारण विवाह किया। शेख अब्दुल कुद्दूस के कई पुत्र थे और उनके चेले भी बड़ी संख्या में थे। उनका स्थान उनके पुत्र शेख रुक्नुद्दीन ने लिया था। 1579 ई० में शेख साहब जबरदस्ती हज़र के लिए भेजे गए। दो साल बाद अत्यधिक कष्ट भोगकर 1586 ई० में उनकी मृत्यु हुई।

कदायन का हिंदी पाठ -

ऊँच बिरल फल लाग अकासा । हाय चढे कह नार्हीं आसा ॥
कहु जोगत को बाह पसारें । तहवर डाल छुव को पारें ॥
राती दिवस बहुत रखवारा । नयन देख जाइ सो मारा ॥

कुतुबन

उनका समय विक्रम की सोलहवीं शताब्दी का मध्यभाग (संवत् 1550) था । वह चिडली वंश के शेख बुरहान के शिष्य थे । जौनपुर के बादशाह हुसैनशाह के वह आश्रित थे । इन्होंने 'मगावती' नाम की एक कहानी चौपाई दोहे के क्रम से सन 909 हिजरी (संवत् 1558) में लिखी, जिसमें चद्रनगर के राजा गणपतिदेव के राजकुमार और कचनपुर के राजा रूपमुशीर की कन्या मृगावती की प्रेमकथा का वर्णन है । इस कहानी के द्वारा कवि ने प्रेम माग के त्याग और कष्ट का निरूपण करके साधक के भगवत्प्रेम का स्वरूप दिखाया है ।

रुक्मिणि पुनिवसहि मरि गई । कुलवती सत सो सति भई ॥

बाहर वह भोनर वह होई । घर बाहर को रह न जोई ॥

विधि कर चरित न जान आनू । जो सिरजा सो जाहि निआनू ॥

मझन

इनक सवध म कुछ भी ज्ञात नहीं है । केवल इनकी रचित मधुमालती की प्रति मिलती है । यह रचना विरुम सवत 1550 और 1595 (पद्मावत का रचना काल) के बीच मे सभव है । उसी रचना के कुछ अंश इस प्रकार हैं, जैसा मझन कहते हैं -

देखत ही पहिचानेउ तोही । एक रूप जेहि छबर्यो मोही ॥
एही रूप द्रुत अह छापाना । एही रूप रच सृष्टि समाना ॥
एही रूप सकती औसीऊ । एही रूप त्रिभुवन भर जोऊ ॥
एही रूप प्रगट बहु भेसा । एही रूप जग रक नरेसा ॥

ईश्वर का विरह सूफियो के यहा भक्त की प्रधान सम्पत्ति है, जिमके बिना साधना के माग म कोई प्रबुन नहीं हा सकता, किसी की आँखे नहीं खुल सकती ।

विरह अबधि अवगाह अपारा । कोटि माहि एक परे त पारा ॥
विरह की जगत अविर या जाही । विरह रूप यह सृष्टि सबाही ॥
नैन विरह अजन जिन सारा । विरह रूप दरपन ससारा ॥
कोटि माहि, विरला जग कोई । जाहि सरीर विरह दुर होई ॥

रतन की सागर सागरहि, गजमोती गज बोई ।
चदन की बनवन उपजे, विरह कि तन-तन होई ॥

जिसके हृदय मे यह विरह होता है, उसके लिए यह ससार स्वच्छ दपण हो जाता है और इसमें परमात्मा के आभास अनेक रूपो मे मिलते हैं । तब वह देखता है कि इस सृष्टि के सारे रूप, सारे व्यापार उसी का विरह प्रगट कर रहे हैं । ये भाव प्रेम मार्गी सूफी संप्रदाय के सभी कवियों में पाये जाते हैं ।

मलिक मुहम्मद जायसी

वह प्रसिद्ध सूफी फकीर शेख माहिदी (मुहीज्जदीन) के शिष्य थे। वह जायस में रहते थे। इनकी एक छोटी पुस्तक 'आधिरी कलाम' के नाम से फारसी में छपी है। यह सन् 936 हिजरी में (सन 1528 ईसवी के लगभग) काबर के समय में लिखी गई है। इस पुस्तक में मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने जन्म के सम्बन्ध में लिखा है -

भा अबतार मोर नो सही । तीस बरस उमर कयि बदी ॥

इन पक्तियों का ठीक तात्पर्य जत में आता है। जन्म काल 900 हिजरी माघ में ता दूसरी पक्ति का अर्थ यही निरानगा कि जन्म से 30 वर्ष पीछे जायसी कविता करन लगे। जायसी का सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ है 'पदमावत'। जिसका रचना-काल कवि ने इस प्रकार दिया है -

सन नीले सत्ताइस अहा । कया अरम बन कयि कहा ॥

पदमावन की कथा के प्रारम्भिक खत (अरम बन) कवि ने 927 हिजरी (सन 1520 ई० के लगभग) में लिखे। पर ग्रन्थारम्भ में कवि ने मसनवी की रूढ़ि के अनुसार शाहेबकन शेरशाह की प्रशंसा की है -

शेरशाह दिल्ली सुतानानू । चारहृषड तर्पे जत भानू ॥

अरेही खान राज ओ पादू । सब राले भुईं धरा ललादू ॥

शेरशाह के शासन का आरम्भ 947 हिजरी अर्थात् सन् 1540 ई० में हुआ। इस दशा में यही सम्भव जान पड़ता है कि कवि ने कुछ थोड़े से पद्य तो सन् 1520 ई० में ही रचनाये थे। पर ग्रन्थ की 19 या 20 वय पीछे शेरशाह के समय में पूरा किया गया। पदमावत का एक बगला अनुवाद अराकान राज्य के बञ्जीर मगन ठापुर ने 1650 ई० के आसपास आलोउजालो नामक एक कवि से कराया था। उसमें भी नौ 'नव' में सत्ताइस ही माना गया है -

शेख मुहम्मद जति जखन । रचित पद्य सख्या सप्तविंशत नवशत ॥

जायसी देखन में कुरूप जोर बाने थे। कहते हैं कि शेरशाह ने इनके रूप को देखकर हँसा था। इस पर वह बोले 'मोहिबा हसोसि कि कोहरहि' इनके समय में ही इनके शिष्य फकीर इनके बनाये भावपूर्ण दाहे चौपाइया गाते-फिरते थे।

वह अपन समय क गिद्ध फरीरो म गिन जाते थे । अमठी क राजघरान म इनका बहुत मान था । जीवन के अंतिम दिनों में जायसी जमिठी स दो मील दूर एक जगल म रहा करते थे । वहाँ इनकी मृत्यु हुई । इन्होंने तीन पुस्तकें लिखी हैं । एक तो पद्मावत, दूसरी अखरावट और तिसरी आखिरी कलाम ।

अखरावट म षणमासा के एक एक अक्षर का लेख सिद्धांत सबधी तत्वों स भरी चौपाइया बही गई हैं । इस छाटी सी पुस्तक में ईश्वर, सृष्टि, जीव, ईश्वर प्रेम आदि विषयों पर विचार प्रकट किए गये हैं । 'आखिरी कलाम' में क्यामत का वर्णन है । 'पद्मावत' जायसी के अक्षय कीर्ति का आधार है । जायसी का हृदय कैसा कोमल और प्रेम की पीर से भरा था ।

प्रेम गाथा की परंपरा म पद्मावत सबसे प्रौढ और सरम है । प्रेममार्गी सूफी कविया और क्याओं से इसकी यह विशेषता है कि इसके व्योरे से भी साधना के माग, उमरी कठिनाइयों और सिद्धि क स्वरूप आदि की जगह जगह व्यजना मिलती है । जैसा कि कवि ने स्वयं ग्रंथ की समाप्ति पर कहा है -

तन चितउर, मन राजा किहा । हिय सिधल बुधि पवमिनि चोहा ॥
गुरु मुआ जेइ पय देखावा । बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा ॥
नागमती यह बुनिया घघा । याचा सोई एहि चित घघा ॥
राघव दूत सोई सतानू । माया अलाउदी गुलतानू ॥

पद्मावत म जायसी ने पद्मिनी के रूप का जो वर्णन दिया है वह पाठक को सौंदर्य की भावना में मग्न कर देता है । आग प्रहार के अंतकारों की योजना उममें पाई जाती है । कुछ पद्य -

सरवर तीर पद्मिनी जाई । लींवा छोरि केस मुखलाई ॥
ससिमुख, अम मलयगिरि धारवा । नागिनि नागि तीरुह खलुं पारवा ॥
जोनई घटा परो जग छोहा । सति के सरग तीरुह जगु राहा ॥
भूमि चकोर बीठि मुख लावा । रोव घटा गह ख व देलावा ॥

पद्मिनी के रूप वर्णन म जायसी ने कहीं कहीं उम अंतत सीरई भी कीर, आसने विरह म यह मारी सृष्टि त्यागुल भी है, यज्ञे ती मृत्यु मी त निग ती -
घरनी का पल ती इमी यगी । गाग याग जागु मुलु भागी ॥
उग यागगुह अल को जो ग मारा । बेध रतु सागरी रीमारा ॥

गगन नरवत जो जाहि न गने । ये सब घान ओहि कं हने ॥
 घरती बान घेघि सब राखी । साली ठाढ़ देहि सब साली ॥
 रोव रोव मानुस तेन ठाढ़े । सूतहि सूत घेघ अस गाढ़े ॥

बटनि बाग अस ओपहें घेघे रन घन ढाल ।
 सीजहि तेन सब रोयां, परबहि तेन सब पांल ॥

इसी प्रकार यागी रतनसन व पठिन माग व मणन म साधन व माग व विघ्नो
 (धाम, क्रोध आदि विचारो) की व्यजना की गयी है -

ओहि मिलान जो पहुँचे कोई । तब हम कहब पुदय भवत सोई ॥
 हें आगे परवत के घाटा । विषम पहार अगम सुठि घाटा ॥
 बिच बिच नवो लोह ओ नारा । ठावैहि ठावै बठ बटपारा ॥

उसमान

वह गाजीपुर के रहने वाले थे । इनके पिता का नाम शेख हुसैन था । वह पाच भाई थे । वह जहागीर का माय थे । वह शाह निजामुद्दीन चिश्ती की शिष्य परंपरा में हाजी वावा के शिष्य थे । इन्होंने अपना उपनाम 'मान' लिखा है । उसमान ने 1022 हिजरी अर्थात् 1613 ईसवी में 'चित्रावली नामक पुस्तक' लिखी । उसमें कवि ने अपना परिचय देते हुए लिखा है -

आदि हुता विधि माये लिखा । अक्षर चारि पढ़ हम सिखा ॥
देखत जगत चला सब जाई । एक बचन पं अमर रहाई ॥
बचन समान सुया जग नाही । जेहि पाए कवि अमर रहाई ॥
मोहें चाउ उठा पुनि होए । होउं अमर यह अमरित पीए ॥

विरह बणन के अतगत बसत ऋतु का बणन सरस और मनोहर है -

ऋतु बसत तन नीबन फूला । जहें जहें भौर कुसुम रंग भूला ॥
आहि कहाँ सो भवर हमारा । जेहि विनु बसत बसत उजारा ॥
रात बरन पुनि देखि न जाई । मानहुँ दया बहूँ दिसि लाई ॥
रतिपति दुरद ऋतुपति बली । कानन बेह आई दलमली ॥

कासिम शाह

वह दरियावान (बाराबती) बन रहा था तब । सन् 1788 के लगभग वह
मनमान था । इन्हीं 'हंस जवाहिर' नाम की कहानी लिखी है जिसमें
राजा हुस्र और रानी जवाहिरबी कथा का गार मयि त दिया है -

क्या जो एक गुप्त महें रहा । सो परगट जवाहिरम बहा ॥
हम जवाहिर विधि अंतरा । निरमन रूप मो दई सँवारा ॥
बल्लभ नगर घुरहान मुस्तानू । त ही घर हस भये जस भानू ॥
आलमसाह चीनपति भारी । सेहो घर जनमी जवाहिर तारी ॥
सेहि कारन घट भणउ वियोगी । गणउ सो छाँड़ि बग होइ जोगी ॥
अत जवाहिर हस घर आनी । सो जग महें घट गणउ बगानी ॥
सो मुनि जान कया भे कीहा । लिखेहु सो प्रेम रहे जग घोटा ॥

कादिर

कादिर वक्श पिहानी का जन्म स० 1635 माना जाता है। वह जिला हरदोई के रहनेवाले थे। सैय्यद इब्राहिम व शिष्य थे। इनका कविता-काल स० 1660 के आसपास समझा जाता है। इनकी कोई पुस्तक नहीं है, बल्कि फुल्लर कवित्त पाये जाते हैं -

गुन को न पूछें कोउ, औगुन की बात पूछ ।
फहा भयो दर्द, कलिकाल या लरानो हँ ॥
पोथी और पुरान ज्ञान, ठटठ में डारि देत ।
चुगुल चबाइन को, मान ठहरानो हँ ॥
कादिर कहत यासों, कछु कहिये की नाहि ।
जगत की रीति देखि, चुप मन मानो हँ ॥
खोलि देखो छिपो, सब ओरन भाति भाति ।
गुन ना हिरानो, गुनगाहक हिरानो हँ ॥

सुवारक

सैफ सुवारक जती मरगा काली जीर भरती क अष्टे गति जीर हिनी क सहृदय गवि थ । इतग नम विलप्रामी में सयत् 1640 म हुआ था । इनका कथिता काल स० 1670 । आयुषाय मानना चाहिए । यह केवल श्रुमार की कथिता करते थे । इनका प्राण थय अन्वगत और तिलकायन है ।

जगन्नाथ और तिलशाक से :-

परी सुधारक तिय बदन, अलख ओप अति होय ।
मनो घद की गोद में, रहो तिता-सी सोय ॥
चियुक् रूप में मन पर्यो, छयित्तन तुणा विचारि ।
कइति सुधारक ताहि तिय, अलख डोरि-सी डारि ॥
चियुक् रूप रूप रतरी अन्तर, तिम सु धरत दृग बंस ।
धारो बंस तिगार की, सींचत मनमय धन ॥

पटुवन से :-

एनर धरन बाल, नगा सतत भाव ।
मोतिन के माल डर, सोह भली भांति ह ॥
चदन घड़ाया धार, चदमुत्ती मोहनी-सी ।
प्रात ही अहाय पग, धारे मुसुबत ह ॥
धुनरी विचित्र स्याम, सजिक सुधारकज ।
दांकि नखतिल से, निपट सपुचाति ह ॥
चट्टे लयेटि क, समेटि क नखत मानो ।
दिन की प्रणाम किए, राति धली जाती ह ॥

जमाल

वह बोर्ड सहृदय मुस्लमान बंधि थे। इनका रचना काल सन्त 1627 के आसपास अनुमानित है। इनके नीति और शृंगार व दाहे राजस्थान में लोकप्रिय हैं। उसके कुछ नमूने दिये जा रहे हैं -

पूनम चाँद, कुसुम रग, नबी तीर द्रुम डाल ।
रेत भीत, भुस तीयणो, एधिर महीं जमाल ॥
रग ज खोल मजीठ का, सत बचन प्रतिपाल ।
पाहण रेखह करम गत, एकिमि मिट, जमाल ॥
जमला ऐसी प्रीति कर, जसी केस कराय ।
क काला, क उजला, जय तब सिर ह्यू जाय ॥
मनसा तो गाहक भरा, नना भरा हत्ताल ।
धनी बसत धेचं नही, किस त्रियि यने जमाल ॥
यालपणे धौला भया, तरणपणे भया लाल ।
यूहदपणे बाला भया, कारण कोण जमाल ॥
कामिण जायक रग रच्या, दमवत भुक्तर कोर ।
इम हसा मोतो तजे, इम चुग-चुग लिए धपोर ॥

गुलाब नबी 'रसलीन'

इसका जन्म बिलग्राम में 30 जून सन् 1699 ई० को मयद बश म यादर के रूप में हुआ था। रसलीन स्वाभिमानी व्यक्ति थे। इस स्वाभिमानी गुण सम्पन्न कवि ने अत में रामचंतीनी व युद्ध में लड़े हुए सन् 1750 ई० में वीर गति पाई। इनके काव्य का नमूना देखें -

शातरस कवित्त

तेरेई मनोरम को होत ह सपन लोक ।
 तूही हय अकास करे नखत उबोत है ॥
 तूही पाचो तत्व संल तह पछी होत ।
 तूही हय मनुख पूगे गोत अवगीत ह ॥
 तूही बन नारी फिर ताचे रसलीन होत ।
 तूही हय के सप्रु लोते आपन तें पोत है ॥
 जाग परे झूठो जो सपन लोक होत सोंही ।
 आतमा विचारलोक जागत को होत ह ॥

नबी की स्तुति :-

नूरइलाह ते अब्दलनूर मुहम्मद को प्रगप्पा सुभ आई । पाछें भये तिरुलोक जहा लगऊ सब सष्टि जो दृष्टि दिखाई ॥ आवि दलील को अत की रसलीन जो बात घई पुनि पाई । तौ ली न पायं इलाही को कते ह जो ली मुहम्मद में समाई ॥

